जगपति चतुर्वेदी
संसार के सर्प
1244
किताब महल प्रकाशन

संसार के सर्प

[संसार के साँपों के वंश और मुख्य जातियों, प्रजातियों का साधारण वर्णन]

लेखक
जगपति चतुर्वेदी
सहा० सम्पादक, 'विज्ञान'

कि ता ब म ह ल इ ला हा बा द
१९५७

दो शब्द

साँपों के श्रेणी-विभाजन का परिचय कराने वाली कोई पुस्तक अभी तक हिन्दी में देखने में नहीं आई जो संसार भर के साँपों की जातियों, वंशों आदि का विहंगम रूप सामने रखती हो। हमने इस पुस्तक में उनका परिचय विशेष ब्योरे के साथ देने का प्रयास किया है।

पुस्तक के सम्बन्ध में विशेष निवेदन यह करना है कि यह इस विषय के सम्बन्ध में हिन्दी के पाठकों, जिज्ञासुओं तथा विद्वानों का ध्यान आकृष्ट करने के लिए ही है। विषय के प्रतिपादन में कहीं भूलें भी हो सकती हैं।

दूसरे यह प्रारम्भिक प्रयत्न ही है जिसके लिए हमने ज्ञान और विषय-प्रतिपादन की दुर्बलता का ध्यान भुला कर भी पुस्तक प्रस्तुत करने का साहस किया है।

जगपति चतुर्वेदी

अनुक्रम

सर्प-परिचय

सर्प का विचित्र लम्बोतरा आकार भूलने या वर्णित करने की वस्तु नहीं है। कुछ अँधेरे में कहीं रस्सी पड़ी रहने पर भी साँप होने का भ्रम तो तर्कशास्त्रियों द्वारा 'भ्रम' की ठीक व्याख्या के लिए एक प्रसिद्ध उदाहरण ही बना है। हम लोग इस जन्तु को काल का विशेष दूत ही मानतें है। सर्प ने काटा न भी हो, या काट ही न सकता हो, तब भी उसे देख कर श्वास या हृदय की गति में हमें तुरन्त ही विशेष परिवर्तन दिखाई पड़ने लगता है। परन्तु जंतुशास्त्री हमें सर्प-जगत का दूसरा पहलू भी दिग्दर्शन करा सकने में समर्थ हो सके हैं। संसार भर में इसकी भाँति-भाँति की जाति-प्रजातियों, वंशों आदि का अध्ययन तथा पर्यवेक्षण कर वे हमें यह तथ्य अवगत कर सकने के लिए प्रेरित करते हैं कि सर्प भी प्राणि जगत में अन्य प्राणियों की भाँति एक स्थान रखते हैं। उनमें सभी यम के दूत बन कर संसार में नहीं आते बल्कि हमें काल सरीखे विषधर अनुभव होने वाले सर्प भी केवल अपने शिकार की प्राप्ति तथा रक्षा के लिए ही विषदंतों से सज्जित होते हैं।

भूगर्भशास्त्रियों के मत से पृथ्वी के इतिहास में पुराजंतुक युग में पहले मछलियों या जलजंतुओं का उदय हुआ जिनके पश्चात् उभजीवी या मंडूक समान जंतु उत्पन्न हुए जिनको कुछ गलफड़ों तथा कुछ फेफड़ों से श्वास लेने की युक्ति रखते पाया जाता है। इनके पश्चात् ही शुद्ध फुफ्फुस (फेफड़े) की व्यवस्था वाले स्थलचर

जंतु संसार में अवतरित हुए जिन्हें सरीसृप नाम दिया जाता है। सर्प इन्हीं में एक विभाग या संविभाग बनाते हैं। हमें सारा सरीसृप-जगत एक-सा नहीं दिखाई पड़ता। उनमें अधिकांश को क्षुद्र पाद-युक्त पाया जाता है परन्तु सर्प तो उनसे भी हीन रूप, निष्पाद शरीर के जंतु हैं।

लोगों को प्रायः यह बात प्रतिभासित होती है कि सर्प कुछ आदिम या अवनत अवस्था के ही सरीसृप होंगे तथा अन्य सरीसृपों मगर, कच्छपों, सरटों आदि ने उन्नति कर पैर उत्पन्न किये होंगे परन्तु वस्तुस्थिति ठीक विपरीत ही है। यह बात सत्य है कि अन्य सरीसृपों में पादहीन जातियाँ पाई जाती हैं परन्तु अन्य पादहीन सरीसृप या सर्प हीन अवस्था के द्योतक नहीं हैं, प्रत्युत पहले इन सब की पुरानी जातियाँ पादयुक्त ही रही होंगी या पादयुक्त किसी वंश या जाति से ही इनका जन्म हुआ होगा; परन्तु विशेष जीवन-क्रम तथा स्थितियों के अनुरूप इन्होंने अपना रूप विशिष्ट रूप का बनाना प्रारम्भ किया। फलतः वे विशिष्टता की एक सीमा तक पहुँच कर पादहीन बन गये जिसमें उन्हें चलने-फिरने, आहार प्राप्त करने, छिपे रह सकने आदि की विशेष सुविधा हो। अतएव सर्प का रूप सरीसृपों के किसी विभाग का अवनत या भ्रष्ट रूप नहीं कहना चाहिए प्रत्युत्त विशिष्ट अथवा विशेष आवश्यकताओं तथा स्थितियों के कारण विशेष रूप का विकसित रूप कहना चाहिए।

सरीसृपों की सभी जातियों से सर्प का प्रमुख विभेद उसके निचले जबड़े की रचना करने वाली दो अस्थियों का जकड़े रूप में सूत्रबद्ध न होकर लचीले बंधनों से बँधा होना है जिससे वे अपना मुख फैला कर बड़े आकार का शिकार भी निगलने की सुविधा प्राप्त कर सकें। किसी भी अन्य सरीसृप में निचले जबड़े की अस्थि इस

प्रकार लचीले रूप में बँधी नहीं होती। सर्प के मुख की रचना करने वाली सभी अस्थियाँ बड़े शिथिल रूप में परस्पर बँधी होती हैं इस कारण शिकार निगलने के समय वे मुख को अधिक से अधिक फैला सकती हैं। बहुत से साँपों में तो ऊपरी जबड़े तथा तालू की अस्थियाँ भी स्वतंत्र गति कर सकती हैं।

सर्पों के विभिन्न आकार होते हैं। एक ओर जहाँ ३० फुट लम्बा अजगर लगभग पौने चार मन का हो सकता है, वहाँ दूसरी ओर एक भूगर्मी वयस्क सर्प पाँच या छः इञ्च लम्बा ही पाया जाता है जिसकी मोटाई एक इञ्च के आठवें भाग के बराबर बगुले के पङ्ख-सी ही हो। गति पर ध्यान देने पर हमें एक ओर कहीं रेत में मुँह छिपा कर पड़ा रहने वाला दुमुहाँ साँप दिखाई पड़ता है तो दूसरी ओर वायु गति से भागने वाले सर्प भी मिलते हैं।

सर्पों का प्रसार-क्षेत्र भी बड़ा विभिन्न तथा व्यापक पाया जाता है। साइबेरिया के निम्न भाग में स्टेपी मैदानों तक में कुछ मंडली (वाइपर) सर्प इस समय पाये जाते हैं। वे सम्भवतः नवागंतुक ही हैं परंतु सरटों (गिरगिट, गोह, छिपकली आदि) की अपेक्षा सर्पों को अवश्य ही अधिक प्रसारित पाया जाता है। हम साँपों को अधिक नहीं देख पाते। उसका कारण यह है कि अधिकांश सर्प छिपकर ही जीवन व्यतीत करते रहते हैं। विशेष कर आहार कर चुकने के पश्चात् तो पाचन काल में उन्हें अधिक छिपकर रहना पड़ता है।

शीतोष्ण कटिबंधों में सरटों की अपेक्षा विशेष अधिक दूर तक के क्षेत्रों में सर्पों को प्रसारित पाया जाता है। अपेक्षाकृत उत्तरी या शीत अक्षांशों में जहाँ सरटों का बिल्कुल नाम नहीं होता, वहाँ भी अनेक सर्प की जातियाँ पाई जाती हैं। किंतु सरटों की ही भाँति सर्पों की भी सबसे अधिक संख्या उष्ण कटिबंधों में ही है। भूमध्य रेखा से

जितना ही उत्तर या दक्षिण बढ़ा जाय, उनकी जातियाँ न्यून होती पाई जाती हैं।

शीतोष्ण कटिबंधों में जहाँ हिम जम जाने योग्य शीत का निश्चित रूप से प्रकोप होता है, सरीसृप एक तो कम होते हैं, दूसरे बस्तियों की वृद्धि से मनुष्य द्वारा सर्पों का दिन पर दिन अधिक बध होता जा रहा है। परिणाम यह हो रहा है कि सर्पों की बहुत-सी जातियाँ दुर्लभ या लुप्तप्राय हो रही हैं। अमेरिका के फ्लोरिडा प्राय-द्वीप में बस्ती के प्रसार का यह परिणाम हुआ कि घोर जंगल तथा पहाड़ों के मध्य सड़कें बनीं। मोटरों का अधिकाधिक आवागमन प्रारम्भ हुआ। ज्ञात होता है कि मोटरें और बसें सर्पों का काल हैं। प्रतिवर्ष कई सहस्र सर्प इन से दब और कुचल कर मरने लगे। घने जंगलों के मध्य सड़क ही खुला स्थान होता है अतएव शिकार की खोज में सर्प उस मार्ग पर फैलते हैं तथा धूप खाने का अच्छा स्थान समझ कर खुली सड़क पर ही आराम करने लगते हैं। उधर तीव्र-गति से कोई मोटर आकर उनको भाग सकने का अवसर देने के पूर्व ही कुचल डालती है। जब कोई सड़क नई हो बनी हो, उस पर जाकर देखा जाय तो दब कर मरे पड़े रहने वाले सर्पों की संख्या सैकड़ों पाई जा सकती है। एक पर्यवेक्षक ने तो दस मील की दूरी में तीस काँच सर्पों (ग्लास स्नेक) को मरा हुआ देखा। वे कुचल कर तुरन्त के ही मरे पड़े थे। किंतु यही दशा संसार भर में नहीं पाई जा सकती। मनुष्य की कितनी भी प्रगति हो, किंतु सर्पों के रहने योग्य बीहड़ बनों तथा पहाड़ी स्थानों की कमी बहुत दिनों तक न हो सकेगी।

सर्पों के प्रसार क्षेत्र-पर दृष्टि डालने से कुछ विस्मय भी होता है। कुछ वंशों को अनेक क्षेत्रों में प्रतिनिधित्व करते पाया जाता है,

परन्तु कुछ ऐसे वंश भी हैं जिनका प्रसार एक गोलार्द्ध के कुछ क्षेत्रों में ही सीमित-सा है, परन्तु कोई भूली-भटकी-सी जाति कहीं दूसरे गोलार्द्ध के दूर के किसी क्षेत्र में उसका प्रतिनिधित्व कर प्रसार प्रकट करती है। उदाहरण के रूप में अजगरों को लिया जा सकता है। भारत, मलाया, अफ्रीका आदि में पाये जाने वाले अजगर पाइथन या पूर्वी अजगर उपवंश के माने जाते हैं। इनके विपक्ष दूसरा उपवंश बोआ का होता है जो पश्चिमी गोलार्द्ध का ही जंतु है इसलिए उसे पश्चिमी अजगर बोआ उपवंश का कहते हैं। पूर्वी अजगर उपवंश का प्रसार एशिया, अफ्रीका, मलाया तथा पूर्वी द्वीप समूह और आस्ट्रेलिया में है किंतु केवल एक जाति पश्चिमी गोलार्द्ध में मेक्सिको में पाई जाती है। पश्चिमी अजगर या बोआ उपवंश का प्रसार यों तो दोनों गोलार्द्धों में है। परन्तु इसकी सभी बड़ी जातियाँ केवल अमेरिका के उष्ण कटिबंध में पाई जाती हैं। उन अमेरिकीय जातियों की समकक्ष एक जाति मेडागास्कर में पाई जाती है। साथ ही मेडागास्कर में एक वृक्षचारी बोआ भी पाया जाता है जो अपनी पूँछ शाखाओं में लपेटकर शरीर अवलम्बित कर सकता है। इसी तरह की चार जातियाँ अमेरिका में भी पाई जाती हैं। वैज्ञानिकों का मत है कि सरीसृपों की उत्पत्ति कहीं पर मध्य एशिया में हुई। सर्प भी वहीं उदय हुए होंगे। उन दिनों भूतल के खंड परस्पर मिले-से रहे होंगे या एक दूसरे तक जा सकने के लिए भूतल पट्टियाँ संलग्न रही होंगी। कदाचित् उन कारणों से विभिन्न स्थलों में एक रूप की जातियाँ आज फैली पाई जाती हैं।

पौराणिक कथाओं में हम नागलोक की बात सुनते हैं। सुनने की ही बात है तब तो हम नागकन्या की बात भी उठा सकते हैं, परन्तु उसकी कुछ लोग यह व्याख्या कर सकते हैं कि नाग नाम की

कोई पुरानी मानव जाति कहीं पर अपना राज्य या अधिकार स्थापित किये होगी। उनके सरदार या अध्यक्ष की कन्या ही नागपुत्री या नागकन्या कहला सकी होगी। हमें इन कथाओं से कोई विशेष प्रयोजन नहीं है, परन्तु आज के वैज्ञानिक पर्यवेक्षणों से यह बात ज्ञात हो सकी है कि शीत देशों में ऋतु-प्रकोप से बचने के लिए कहीं पहाड़ी कगारों या अधिक कठोर चढ़ाई की या खड़ी-सी किनारी या दीवाल के अन्दर गुफा में बहुत भारी दलों रूप में कुछ जातियों के सर्पों को दीर्घ शीतकालीन निद्रा में लिप्त होते पाया जाता है। शीत का जहाँ बाहर की ओर भारी प्रकोप दिखाई पड़ता है, हिम का चारों ओर प्रसार-सा दिखाई पड़ता है, वहाँ उस गुहा या खोह के अन्दर अपेक्षाकृत अधिक उष्णता रहती है और सर्प घोर शीत ऋतु को वहाँ अचेतन-से पड़े रहकर निराहार ही बिता ले जाते हैं। उन्हें नागलोक या सर्प नगर कहें तो कुछ अनुचित नहीं कहा जा सकता।

जब शीत ऋतु का अवसान होकर वसंत का पुनः आगमन होने लगता है, इन नागों या सर्पों की बस्ती में प्राण-संचार-सा दिखाई पड़ने लगता है। धीरे-धीरे सर्प बाहर निकलने और आहार ढूँढ़ने लगते हैं। मादा सर्प को कहीं दूर तक के स्थान में पहुँच कर किसी चट्टान के नीचे अंतराल पाकर अंडा देने का उपक्रम करते पाया जाता है। चट्टान की बहुत मोटी या बहुत पतली तह न होने से उसके निचले तल में अण्डों के लिए उपयुक्त तापमान प्राप्त होता है। एक ओर बहुत अधिक गर्मी नहीं पहुँचती, दूसरी ओर घोर ठण्डक का भी सामना नहीं करना पड़ता। चट्टानों के नीचे कुछ गड्ढे से बनाकर मादा उसमें अण्डे रखकर तुरन्त ही चली गई होती है। केवल प्रकृति द्वारा उनका रक्षण तथा विकास होता रहता है। कुछ सप्ताहों में

अण्डों से शिशु निकलते हैं। वे पहले कुछ दिन तो वहीं पड़े रहते हैं, नन्हें कीट का आहार करते हैं। परन्तु शीघ्र ही कुछ बल प्राप्त कर बाहर निकल आते हैं। कुछ दिनों में कदाचित उन सर्प-शिशुओं में से कुछ को या बहुतों को अगले वर्ष के शीत काल के आगमन के पूर्व उन पूर्वजों की शरणस्थली या सर्प नगरी में पहुँचने के लिए पहाड़ की चढ़ाई पर जाते देखा जाता है। उनकी कोई अंतर्वृत्ति ही उस रक्षित गुहा या कंदरा तक पहुँचाती है।

यह शीतकालीन दलबद्ध व्यवस्था सब सर्पों में नहीं पाई जाती, परन्तु जिनमें ऐसी रीति है उन्हें सहस्रों तक की संख्या में एकत्र सङ्घबद्ध-सा शयन-क्रिया करते पाया जाता है। कहीं एक ही गुफा में विभिन्न जातियों के सर्पों को भी जुटा पड़ा पाया जाता है। कहीं एक जाति के सर्पों के नीचे लेटे पड़े रहने पर ऊपर से किसी दूसरे सर्प को सरक कर निकल जाते देखकर उनके द्वारा कोई रोष-भाव प्रकट होते नहीं पाया जाता।

सर्पों की सब जातियाँ एक-सा सन्तानोत्पादन-विधान नहीं रखतीं। कुछ को अंडजन्मा पाया जाता है। उनमें कुछ को अण्डा देकर उसे अपने शरीर की कुंडली में दबाये रक्षित रखते तथा सेते पाया जाता है परन्तु कुछ सर्पों को तो अण्डा न देकर सदेह शिशु ही कोख से उत्पन्न करते पाया जाता है। उन्हें पिंडजन्मा कहना उचित हो सकता है। उनके अण्डे गर्भ के अन्दर ही शिशु को विकसित करते रहते हैं। उनके फूटने पर शिशु का बाहर जन्म होता है।

संसार भर में लगभग २३०० विभिन्न जातियों के सर्प हैं। इनमें से विषधर सर्प की जातियाँ तो थोड़ी ही हैं। अधिकांश जातियाँ निरापद या विषहीन होती हैं। विज्ञान को सर्पों की जितनी

भी जातियाँ ज्ञात हो सकीं उनमें से दस बारह प्रतिशत जातियों में अत्यधिक विकसित विषदन्त पाये जाते हैं। उनमें भी आधे से ही कुछ अधिक को मनुष्य के लिए घातक माना जा सकता है।

साँपों की विभिन्न जातियों पर ध्यान जाने पर ज्ञात होता है कि एक ओर ऐसी जातियाँ हैं जिनके मुख में जबड़ों के बहुत अधिक खुलने की व्यवस्था नहीं होती। ऐसी जातियाँ सर्प नाम का परिहास-सा ही करती हैं। वे छोटे आकार की ही होती हैं तथा प्रायः चींटियों के बिल में रहतीं और उनकी इल्लियाँ खाकर जीती हैं।

दूसरी ओर हम अजगर को पाते हैं जिसके जबड़े अधिक से अधिक फैल सकने की व्यवस्था प्रकट करते हैं। इन दोनों प्रकार के सर्पों को पूर्वी तथा पश्चिमी गोलार्द्धों में पाया जाता है। अजगरों में तो पिछले पैर भी कुछ नाम मात्र के पाये जाते हैं जो केवल उभाड़ मात्र होते हैं।

सर्पों की जातियाँ प्रजातियाँ या वंशों का निर्णय कपालीय अस्थियों की रचना पर निर्भर नहीं होता। उनकी विभिन्न प्रकार की दन्तावली तथा शरीर के ऊपर आवरण रूप के छिछड़ों या शल्कों द्वारा भी विभेद किया जाता है। छिछड़ों के रूपों, उनकी व्यवस्था तथा पंक्तियों की संख्या भी प्रकट कर सकती है। विषधर सर्पों के विषदन्तों के ही अनेक रूप तथा भेद होते हैं। कुछ को उन दाँतों में कोई खुली नाली या लम्बाई के तल खुला गड्ढा रक्खा पाया जाता है तथा कुछ को टीका लगाने की सूई समान खोखली स्थिति की नलिका समान पाया जाता है। इसमें सन्देह नहीं कि साँप अपने विषदन्त की खोखली अर्न्तास्थिति या नलिकावत रूप से अन्य जन्तुओं के शरीर में उसे नोकीले छोर से चुभो कर जिस प्रकार विष का

प्रवेश करता है, उसी प्रकार मनुष्य ने किसी रोग के प्रभाव का शमन करने के लिए कीटाणु या उसके कुप्रभाव के मारक द्रव पदार्थों को अपने शरीर में प्रविष्ट कराने की व्यवस्था प्रचारित की। टीका या इंजेक्शन की इस पद्धति के सूत्रपात करने में मनुष्य ने सुई को खोखली रख उपयोग में लाने का विधान सर्प के विषदन्तों से ही सीखा होगा। साँपों के इन विषदन्तों को हम एक वंश में तो छोटे सीधे और दृढ़ स्थिति के पाते हैं। परन्तु दूसरे वंशों में वे इतने लम्बे होते हैं कि मुख बन्द रहने पर साँप को उन्हें तालू से चिपका रखने के लिए मोड़ या झुका लेना पड़ता है।

कोलुब्राइन या अल्पविषदन्ती वंश नाम की जातियाँ अपने आकार-प्रकार तथा संख्या और दूर-दूर के भूभागों में प्रसार की दृष्टि से अन्य सभी वंशों को नीचा दिखाती हैं। इस वंश में मुख्यतः सभी निरापद या निर्विष जातियाँ हैं। किन्तु कुछ जातियों का गुट्ट ऐसा भी है जिनमें ऊपरी जबड़े के पिछले भाग में छोटे विष-दन्त होते हैं। उनमें अपेक्षाकृत हल्का विष ही होता है जिसका उपयोग शिकार को मूर्च्छित कर देने के लिए होता है। संसार में जिस किसी भूभाग में साँप पाये जाते हैं, वहाँ इस वंश के साँप अवश्य ही पाये जा सकते हैं। इस वंश में इतने अधिक साँपों की जातियाँ होती हैं कि इसकी कई एक उपजातियाँ निर्धारित की गई हैं। निर्विष साँप तो अजगर भी होते हैं, परन्तु कोलुब्राइन वंश की जातियाँ पिछले पैरों के अवशेष या चिन्ह रूप का उभाड़ नहीं रखतीं। यह उनकी भिन्नता होती है।

एक वंश के प्रभेदों में जातियाँ तो छोटा रूप होती हैं। परन्तु उनमें कुछ को समान लक्षणों के आधार पर कुछ पृथक-पृथक गुट्ट-सा बनाये पाया जाता है। उस गुट्ट या जातियों के समूहों को प्रजाति

नाम दिया जाता है। संसार के समस्त सर्पों के एक दर्जन विभाग होंगे। उनमें तीन सौ प्रजातियाँ मानी जाती हैं। कुल दो हजार जातियाँ इन प्रजातियों के अन्तर्गत ही बटी हैं। कोलुब्राइन वंश में ही आधी प्रजातियाँ सम्मिलित हैं। अतएव हम अनुमान कर सकते हैं कि इस वंश में कितने विभिन्न प्रकार तथा भारी संख्या के सर्प होंगे।

कोलुब्राइन वंश के सर्पों में इतने विभिन्न रूपों के सर्प पाये जाते हैं कि उन सब को एक ही वंश का मानने में साधारण व्यक्ति को कठिनाई प्रतीत होती है। परन्तु शरीर-रचना के कुछ लक्षणों की समानता पर वंशों का निर्धारण किया जाता होगा। वह समानता हमें उनके बाह्य रूप देखने से ही ज्ञात नहीं हो सकती। इस कारण हमें इस वंश में एक ओर पुष्ट शरीर के सर्प मिलते हैं तो दूसरी ओर अत्यन्त क्षीणकाय जातियाँ भी होती हैं। इस कारण शरीर की मोटाई या क्षीणता देखकर विषहीन या विषधर जातियाँ नहीं पहचानी जा सकतीं। इस वंश की कुछ जातियाँ तो दस फुट तक लंबी पाई जा सकती हैं परन्तु उतनी ही लंबाई के अजगर के शरीर से तुलना की जाय तब तो तुरन्त यह बात ही मुख से निकल सकती है, कि "कहाँ राजा भोज और कहाँ गंगू तेली।" इतनी लंबाई की कोलुब्राइन वंशी जाति को तो बिल्कुल कोड़े समान पतला पाया जाता है मानो कोई बहुत लंबी पत्रहीन लता ही हो।

कोलुब्राइन वंशी सर्पों में ही धामिन (मूषक भक्षी सर्प) की गिनती है। अमरिहा, असढ़िहा, पहाड़िया तथा पनिहाँ (या डोंड़) साँपों की गणना भी इस वंश में ही है जो विषहीन होने के लिए प्रसिद्ध हैं। घास का साँप, कृष्ण सर्प, दुग्ध सर्प, पट्टित सर्प आदि विदेशी जातियाँ भी इस वंश की हैं।

निरापद सर्पों में जहाँ धामिन को हम इतना बड़ा रूप रखते पाते हैं, वहाँ हलाहल विष की प्याली समान करैत (कैरात), कोबरा (नाग तथा नागराज आदि) सर्प पतले आकार के ही साँप होते हैं। इनमें ऊपरी जबड़े में छोटे ही विषदन्त स्थिर रूप से जड़े होते हैं परन्तु विष प्रबल घातक होता है। इस वंश में लगभग ६० प्रतिशत साँप पतले ही होते हैं। संसार के सबसे प्रबल घातक विषयुक्त दंतों के इन सर्पों को नागवंशीय (एलापाइन) कहा जा सकता है। इनके वंश का नाम नागवंश (एलापाइडी) है। इस वंश की जातियाँ अफ्रीका, आस्ट्रेलिया और पश्चिमी गोलार्द्ध में भी पाई जाती हैं। आस्ट्रेलिया का काला सर्प तथा व्याघ्र सर्प और अमेरिका के बहुरंजित क्षीणकाय प्रवाल सर्प की गणना नागवंश में ही है।

करैत या नागों की ही भाँति कुछ विषैले समुद्रजीवी सर्प पाये जाते हैं। उन्हें नागवंशी ही मानना चाहिये परन्तु जलजीवन के कारण उनका विशेष वंश ही निर्धारित किया गया है। उनकी पूँछ को खड़े रूप में पिचका बनकर डाँड़नुमा बना पाया जाता है जिससे वे सुविधा-पूर्वक तैर सकें। इनमें तीन फुट से लेकर बारह फुट तक लम्बाई के सर्प होते हैं। लगभग पचास जातियाँ इस वंश में होंगी। भारत महा-सागर तथा पश्चिमी उष्ण कटिबंधीय प्रशान्त महासागर में उनका प्रसार है। जल नागवंश या जल सर्पवंश (हाइड्रोफाइडी) यही बनाते हैं।

मंडली (वाइपर) या दबोइया नाम से प्रसिद्ध सर्प उस जाति का है जो दीर्घ विषदन्ती वंश (वाइपराइडी) में सन्निविष्ट है। इस वंश की जातियों में यह विशेषता है कि इनके विषदंतों की लम्बाई पराकाष्ठा को पहुँची होती हैं किंतु इनके अत्यधिक लम्बे विषदंतों के विकास के साथ ही एक दूसरी व्यवस्था भी होती है। ये इन दाँतों

को मुख बंद करते समय मोड़ कर तालु में चिपका लेते हैं अन्यथा मुख बंद ही न हो। इन विषदंतों को टीका या इंजेक्शन लगाने वाली बड़ी लम्बी सुई का ही प्रतिरूप कह सकते हैं। भारत के दीर्घ विष-दंती सर्प को मंडली या पृदाकु शब्द से प्रसिद्ध पाया जाता है। योरप में वाइपर या ऐडर नाम से प्रसिद्ध जातियाँ पाई जाती हैं। अफ्रीका में पफ ऐडर (फुल्ल मंडली सर्प), रिनोसेरा वाइपर (गंडक मंडली) तथा गैबून वाइपर नामक जातियाँ भी इसी वंश की हैं। यह वंश पूर्वी गोलार्द्ध का ही है।

एक प्रकार के मंडली सर्प (वाइपर) ऐसे होते हैं जिनकी नासिका तथा नेत्रों के मध्य एक छेद होता है। इनको पिट वाइपर या रंध्रीय सर्प कहते हैं। इस वंश को रंध्रीय मंडली वंश कह सकते हैं। इसका मुख्यतः पश्चिमी गोलार्द्ध में प्रसार है किंतु कुछ जातियाँ पूर्वी गोलार्द्ध में भी हैं।

साँपों का जीवन

केवल लम्बोतरा आकार हो जाने से ही जंतु यथार्थ सर्प नहीं कहा जा सकता। साँप का भ्रम तो समुद्र या नदियों की ईल को भी देखकर हो सकता है, परन्तु वह गलफड़ों से ही श्वास ले सकने वाला पूर्णतः जलजीवी ही जंतु है। कुछ पादहीन सरट भी होते हैं। ऊपर से देखने पर कोई नहीं कह सकता कि वह सर्प नहीं है। उसी तरह हमें अजगरों में दुम के प्रारम्भ होने के स्थल पर पिछले पैरों के कुछ बचे-खुचे भाग-से उभाड़ दिखाई पड़ सकते हैं।

शरीर के ऊपर छिछड़े या शल्क का आवरण रखने में सर्प सरटों की समरूपता प्रदर्शित करते हैं किंतु उनके निचले तल के छिछड़े (शल्क) प्रायः कुछ बड़े और विशिष्ट रूप के होते हैं। उनसे छाती के बल चल सकने का कार्य सम्पादित कराना पड़ता है। पशुओं के शारीरिक विधानों में भुजंग या सर्प का वक्षस्थल (शरीर के अधोतल) के बल भूमि पर भाग सकने की व्यवस्था एक विचित्र ही तथ्य है। अधिकांश सर्प तीव्रवेग से वक्र रूप में भूमि पर शरीर से लहर-सी बनाते चलते दिखाई पड़ते हैं। अपनी गति-क्रिया के लिए वे वक्षस्थल के चपटे छिछड़ों पर निर्भर करते हैं। एक के ऊपर एक आरोहित शल्कों के अगले छोर नोकीले से होते हैं। वे बड़े उपयोगी होते हैं। मंदगति से भूमि पर सरकने पर साँप यथार्थ में उन शल्कों को शृङ्खला रूप में शरीर के साथ आगे की ओर पहुँचाते और पुनः पीछे खींचते हैं। इसीसे उनका शरीर आगे की ओर बढ़ता चलता है।

सभी पृष्ठवंशी जंतुओं में शरीर का ढाँचा या कङ्काल खड़ा रखने के लिए रीढ़ की हड्डी (पृष्ठ वंश) होती है जिसकी रचना छोटे-छोटे अस्थिखण्डों से हुई रहती है जिन्हें कशेरुका कहते हैं। वक्ष-स्थल में उन कशेरुकाओं से ही पसलियाँ शरीर के पीछे जाकर जुटी होती हैं।

वक्ष स्थल को छोड़कर शरीर में ऊपरी भाग में गर्दन में भी कशेरुकाओं की ही शृङ्खला होती है जो कपाल की अस्थियों से जा जुटी है। उधर नीचे कमर के भाग में भी कशेरुकाएँ परस्पर जुटी शृङ्खलाबद्ध रूप में होती हैं जो पूँछ वाले जन्तुओं में पूँछ की भी रचना करती हैं। साँपों में भी पृष्ठवंश होता है उसमें चार सौ तक कशेरुकाएँ होती हैं परन्तु इतनी भारी संख्या की अलग कशेरुकाओं को परस्पर इस तरह आबद्ध पाया जाता है कि सहज ही किसी भी ओर मुड़ या घूम सकें।

तेली के कोल्हू की तरह किसी छेद में किसी दंड का मुंड जिस प्रकार सहज घूम सकता है, उसी तरह एक कशेरुका का सिरा कोल्हूनुमा छिद्रयुक्त होता है जो दूसरी कशेरुका के मुँडनुमा सिरे को स्थान देता है। इस प्रकार प्रत्येक कशेरुका का एक सिरा गोल छेद-सा और दूसरा सिरा गदा की गोल छोर या मुंड-सा होता है। उन सबको परस्पर इस प्रकार संधियों द्वारा जुटा तो पाया ही जाता है, सब में पसलियाँ भी होती हैं जो ऐसे ही संधि विधान युक्त होती हैं। साँपों की सारी कशेरुकाएँ इस तरह की ही होती हैं जिनसे आबद्ध पसलियाँ नीचे की ओर अधोतलीय या वक्षीय शल्कों के छोरों से आबद्ध होती हैं किन्तु शल्कों से उनका बन्धन रबड़ समान किसी लचकनशील पदार्थ से ही होता है। इस कारण शल्कों के संयुक्त छोरों को एक बार अपने साथ ही आगे कर पसलियों के सिरे पीछे

खिसक आते हैं। परन्तु शल्कीय जोड़ कभी भूतल के उभाड़ से अटका ही पड़ा रहता है। उधर पसलियों को फिर शल्कीय जोड़ों से जकड़ कर उनको अपने साथ ही आगे बढ़ाने में सफलता मिलती है। इस तरह सारा शरीर गति करता है।

साँपों में शल्कीय आवरण के ऊपर एक पतली त्वचा आवेष्ठित है। वह खंडशः नहीं होती, बल्कि शरीर भर के लिए अखंड ही होती है। इसे साँप वर्ष में कई बार उतार फेंकता है। यही साँप की केचुल नाम से प्रसिद्ध है। केचुल उतरने के पूर्व साँप का रंग कुछ बदल सा गया होता हैं, आँखें श्वेत हो जाती हैं मानों धुएँ से भरे बुलबुले ही हों। एक दो सप्ताहों तक ऐसी स्थिति रहती है। फिर स्थिति पलटती है शरीर पर आबद्ध पड़ी रहने वाली पुरानी केचुल के भीतरी तल पर एक प्रकार के तेल समान पदार्थ का आक्रमण होता है। वह केचुल को शरीर से उतरने के पूर्व शिथिल कर देता है। ऐसी दशा में पहुँचने पर सर्प सिर के ऊपरी भाग से केचुल उतारना प्रारम्भ करता है। आँख के ऊपर के पारदर्शक पर्दे को उतार देता है। फिर निचले जबड़े से केचुल को रगड़कर पृथक करता है। इसके बाद वह पुरानी केचुल से बाहर निकल आता है। इस क्रिया में सारी केचुल का भीतरी तल बाहर की ओर आ जाता है। स्वस्थ सर्प प्रति दो मास पश्चात् अपती केचुल उतार फेंकते हैं।

केचुल उतारने का एक मुख्य प्रयोजन होता है। वह बाहरी आवरण रूप में जब कठोर बन जाती है तो शरीर की जीवन क्रिया में कुछ अवरोध होने लगता है। यदि वह हटाकर फेंक न दी जाय तो सर्प को रक्त संचालन में अवरोध-सा हो और जीवन चलाना कठिन हो जाय।

साँप की आँखों पर पलक नहीं होते। इसलिये वह सदा उन्हें खुला ही रखने के लिए विवश होता है। केंचुल में हम आँख का स्पष्ट चिह्न बना देख सकते हैं। किन्तु रक्षा के लिए पारदर्शक चकत्ती ऊपर मढ़ी होती है केंचुल से साथ वह भी पृथक होती है और दूसरी नई पैदा हो जातो है।

कुछ सरटों (जैसे छिपकली) में भी पलकहीन नेत्र की व्यवस्था देखी जा सकती है, परन्तु पादहीन रूप के सरट में पलकहीन नेत्र कभी नहीं देखे जा सकते। इस कारण एक-सा ही लम्बोतरा पादहीन रूप होने पर भी ऐसे सरटों को सर्प से विभिन्न वर्ग का जान सकना सुगम होता है। साँप के इन पलकहीन नेत्रों के कारण उसके वीभत्स तथा भयावह रूप में वृद्धि होती है और देखते ही मनुष्य या अन्य प्राणी भयग्रस्त हो उठता है। एक दूसरी पहचान भी होती है। प्रायः सभी सरटों में कर्ण कुहर बाहर स्पष्ट रूप से विकसित दिखाई पड़ते हैं, परन्तु सर्पों की किसी भी जाति में बाह्य कर्ण कुहर का नाममात्र का चिह्न नहीं पाया जाता। सरटों के सिर की रचना भी उनका रूप प्रकट करती है। साँप का सिर कभी भी ऊपर उठा या खड़े रूप में पिचका नहीं होता, परन्तु सरटों में प्रायः खड़ा या उभड़ा सिर होता है। साँपों का सिर तो सदा चपटा और प्रायः धड़ से अधिक चौड़ा पाया जाता है। वह धड़ से सीधे ही संयुक्त होता है। गर्दन स्पष्ट रूप से नहीं देखी जा सकती।

विषधर या विषहीन, सभी साँपों में जीभ को दो फाँकों युक्त पाया जाता है। अत्यन्त क्षुद्र या अवनत रूप के सर्प से लेकर दीर्घकाय अजगरों तक में जीभ द्विफंकीय ही पाई जाती है। वे कुछ वस्तुओं की टोह लेने में उसका उपयोग किया करते हैं। गतिशील या

क्रियाशील रहने पर जीभ द्वारा प्रायः टोह लेने का कार्य वे अवश्य करते पाये जाते हैं। उनकी लपलपाती जीभ किसी निरीह दर्शक के बड़े भय का कारण बनती है। बहुत से लोग तो उसे ही विष की मार करने वाला अङ्ग समझते हैं किन्तु उसका सर्प-विष से तनिक भी सम्बन्ध नहीं होता।

जब जीभ मुख से बाहर होकर लपलपाती नहीं रहती है तो मुख में भीतर एक थैली या त्वचाकोष्ठक में सिमटी पड़ी रहती है। साँप की यह जीभ अत्यधिक विशिष्ट उपयोग की होती है। यह कई कार्यों को सम्पादित करती है। वायु-कम्पन तथा वायुमण्डल अथवा भूतल पर के गंधों को अनुभव कर सकने में वह समर्थ होती है। ज्ञात होता है कि नासिका ने गंध अनुभव करने का कार्य स्वयं त्याज्य कर जीभ को सौंप दिया है। इतना ही नहीं, शत्रु या सामने आगंतुक को ललकारने या भयग्रस्त करने के लिए भी साँप अपनी लपलपाती जीभ का निस्संकोच प्रयोग करता है। कुछ साँप अपनी जीभ के दोनों फाँक फैलाकर शत्रु के सम्मुख लपलपाते हैं, या मुख के बाहर निकाल कर निश्चल ही रखते हैं।

साँपों की भोजन-क्रिया उल्लेखनीय है। साधारण या सभी विषहीन सर्पों में प्रायः पतली तथा अंकुश या लंगर के फलकों समान पीछे की ओर मोड़ युक्त पैने दाँतों की दो पंक्तियाँ ऊपरी जबड़े में होती हैं तथा इसी प्रकार के दाँतों की एक पंक्ति निचले जबड़े में होती है। इन अंकुशवत टेढ़े या पुनर्वक्रित दाँतों से साँप को कोई शिकार निगलने में पूर्ण सहायता प्राप्त होती है। जब कोई शिकार इन अंकुशवत मुड़े दाँतों के मध्य आ जाता है तो वह फिर भाग नहीं सकता, समूचा ही निगल लिया जाता है। अत्यधिक विषधर सर्पों, जैसे कर्कर या झनझनियाँ में ऊपरी जबड़े में अंकुशवत् या

पुनर्वक्रित दन्तों की एक ही पंक्ति होती है। वे निर्विष साँपों की भीतरी दंतपंक्ति के ही समवर्ती होते हैं।

मुख की अस्थियों में निचले जबड़े की रचना दो लम्बोतरी और लगभग सीधी अस्थियों के मिलने से होना साँप की विशेषता होती है। वे सामने की छोर पर एक लचकीली बंधनी से बँधे होते होते हैं। इसके अतिरिक्त निचले जबड़े के लटके रहने तथा ऊपरी जबड़े के बंधन में भी विशेषता होती है। वे यथेष्ट गतिशील होते हैं। इस कारण वे फैलकर साँप को प्रायः अपनी गर्दन के व्यास से चार या पाँच गुना बड़े शिकार को समूचा निगल जाने में समर्थ बनाते हैं। सर्पों की यह व्यवस्था एक विशेषता ही होती है। निगलने की क्रिया सरल तथा अनोखी होती है। उसकी ठीक व्याख्या तो करना कठिन है किंतु साधारण क्रिया बताई जा सकती है। मान लें कि कोई साँप हमारी तर्जनी या निर्देशक उँगली के ही बराबर है और वह एक बड़ा चूहा निगल जाना चाहता है। यह कार्य उसके लिए कोई कठिन नहीं।

निगलने के लिए शिकार पहले थूथन द्वारा पकड़ा जाता है। ऊपरी जबड़े की एक हड्डी तथा निचले जबड़े की समवर्ती एक हड्डी आगे आती है। वे शिकार को दबा लेती हैं। उनमें लगे अंकुशवत या पुनर्वक्रित दाँत शिकार के बदन में धँस जाते हैं। फिर सिर का पार्श्ववर्ती भाग कुछ पीछे खिचकर शिकार को कुछ भीतर की ओर सरकाता है। यह क्रिया पुनः दोहराई जाती है। दोनों जबड़े के एक पार्श्व की हड्डियाँ ही शिकार को एक बार जकड़े रहती हैं। जब एक ओर या पार्श्व की हनु-अस्थियों (जबड़े की हड्डियों) द्वारा दबाया हुआ शिकार का अंग मुख में पीछे खिसका लिया जाता है तो दूसरे पार्श्व की हनु-अस्थियाँ आगे की ओर बढ़ने के लिए स्वतंत्र

हो जाती हैं और शिकार का शरीर आगे की ओर पकड़कर पीछे खींचने लगती हैं। मुख से भीतर पहुँचने पर गर्दन तो लचीली होने से बहुत फैल सकती है, इसलिए पेशियों की क्रिया से शिकार उदर में जाने लगता है।

साँपों की आखेट-क्रिया विभिन्न विचित्रताओंयुक्त पृथक-पृथक रूपों में विकसित पाई जाती है। बहुत से साँप ऐसे विकट जंतुओं का शिकार करते हैं जो अपने प्रबल दाँतों तथा पैने पंजों से प्रहार कर सकने में समर्थ होते हैं। साँपों में तो हाथ-पैर का अभाव ही होता है अतएव ऐसे दुर्घर्ष आखेटों को अविलम्ब ही पराभूत करना परमावश्यक होता है अन्यथा उनके नखों, दाँतों, पंजों आदि से इसका नर्म छिछड़ों से आवृत शरीर क्षत-विक्षत हो जाय।

बहुत से निर्विष साँप अपने आखेट को मारने के लिए अपनी कुण्डली से कुचल या पीस डालने का उपाय करते हैं। वे अचूक तथा अविलम्ब प्रहार कर अपनी कुण्डली तुरंत ही शिकार के ऊपर कस देते हैं जिसमें उसे काटने का अवसर ही न प्राप्त हो। इसके लिए कुछ साँपों को बहुत ही चुपके से किसी पक्षी या स्तनपोषी पर प्रहार करते देखा जाता है। कहीं घास में दुबके रहकर निकट से जाते पशु-पक्षी की गर्दन में वे अपनी कुण्डली लपेट लेते हैं। आखेट को पकड़ने के लिए उनका मुँह विशाल रूप में फैल जाता है। इस कारण आखेट इतना निकट हो जाता है कि वे अपने अंकुशनुमा दाँत तुरंत गड़ा देते हैं। फिर तो दाँतों को छुड़ाकर निकल भागना उस शिकार के लिए असम्भव ही होता है। मुख द्वारा पकड़ते ही कुंडली भी उस जंतु के शरीर के चारों ओर लिपटी दिखाई पड़ सकती है। इन सब क्रियाओं को एक साथ ही पल मारते ही पूर्ण होते पाया जाता है। कुछ क्षणों में ही सब कुछ समाप्त हो जाता है। इन द्रुत-

गति के प्रहारों से आखेट (शिकार) किङ्कर्तव्यविमूढ़-सा बेबस हो जाता है। उसे अपनी रक्षा की युक्ति ही सूझ नहीं पड़ती। साँप तो अपने विद्युत वेग के प्रहारों से जंतुओं को दाँतों का प्रयोग ही नहीं करने दे सकता। पैर भी कुण्डली से आबद्ध होने से वह भाग नहीं सकता।

साँप के कुण्डली-बंधन की बड़ी प्रशंसा की जा सकती है, किंतु वह कोई बहुत शक्तिशाली क्रिया नहीं होती। उसका उद्देश्य श्वास-नलियों को अवरुद्ध कर गलाघोंट देना ही होता है। किसी भी जंतु की हड्डी साँप की कुण्डली के कितने भी प्रभावपूर्ण बंधन से चूर्ण नहीं होती। पूर्वी या पश्चिमी अजगरों तक की कुण्डली के बंधनों में अस्थियों को ध्वस्त या चूर्ण करने की शक्ति नहीं होती। साँप न तो कभी हड्डी तोड़ने का उद्योग ही करता है और न यह सामर्थ्य की ही बात होती है। हड्डी तोड़ने की शक्ति अनावश्यक ही हो सकती है। सदा प्रहार सफल भी नहीं होता। कोई बहुत चपल या सशक्त जन्तु पूर्णतः आक्रान्त होने के कुछ क्षणों पूर्व ही उछल कर उसके बंधन में आने से बच ही नहीं सकता, बल्कि वह साँप को काटने का भी कभी अवसर पा सकता है। इस प्रकार हम साँप को तड़ित वेग से जहाँ किसी जन्तु की गर्दन में अपनी कालवत् कुंडली लिपटाये देखते, वहाँ आक्रान्त जन्तु अपनी असाधारण स्फूर्ति से उस कुण्डली से अपनी गर्दन बाहर ही रखकर स्वयं ही आक्रामक बनने का अवसर पा सकता है। किंतु अपनी थोड़ी पकड़ में भी आये जन्तु को साँप कुण्डली के बंधन में न कर सकने पर भी यथासंभव उसे पराभूत कर लेने का उद्योग करते ही रहते हैं।

कुछ साधारण छोटे आकार के साँप अपने शिकार को बड़ी ही शीघ्रता से निगलते हैं। मंडूकभक्षी सर्प विशेषतया ऐसी

शीघ्रता करते हैं। उन्हें ऐसी क्रिया के लिए विशेष रूप के दाँत मिले होते हैं। जब साँप किसी मेढक को पकड़ लेता है तो मेढक में अपना शरीर बहुत अधिक फुला लेने की वृत्ति होती है। इस कारण उसे निगलने में साँप को कठिनाई हो सकती है। इस कठिनाई को दूर करने के लिए साँप को कुछ युक्ति करनी पड़ती है। वह अपने मुख के पिछले भागों में बड़े दाँतों से सज्जित होता है। उनसे मेढक का शरीर चीर देता है जिससे हवा बाहर निकल कर मेढक का शरीर छोटा हो जाता है।

कुछ साँपों में विषदंतों को मुख के पिछले भाग में स्थित पाया जाता है। उनको पश्चविषदंती या पिछले भाग में विषदन्तों के सर्प कह सकते हैं। वे भी मंडूकभक्षियों की भाँति आहार उदरस्थ करने की सुविधा पाते हैं। परन्तु मेढक के शरीर को पचकाने के लिए उनका पेट चीर कर वायु निकालने की क्रिया समान उन्हें कोई दूसरा मार्ग पकड़ना पड़ता है। वे अपने पिछले या पश्चातवर्ती विषदन्तों से आखेट को विषदंश द्वारा मूर्च्छित कर देते हैं। ऐसी जातियों के बहुसंख्यक सर्प उष्ण भूभागों में पाये जाते हैं। उनमें से अधिकांश सर्पों को मनुष्यों के लिए हल्का विष-प्रभाव दिखा सकने वाला ही पाया जाता है। यथार्थ में वे कदाचित ही किसी मनुष्य को काटते हों। काटने पर भी कदाचित ही कभी कोई मरता हो। इन साँपों का आहार मुख्यतः सरट होते हैं। यदि इनको वे शीघ्र न निगल सकें तो ये बड़े कष्टकर आखेट सिद्ध हों। इन साँपों के पश्चात्वर्ती अंकुशनुमा दाँतों में मूर्च्छा उत्पन्न करने योग्य विष होता है। जब आखेट पकड़ लिया जाता है तो जबड़े की हड्डी शीघ्रता से आगे बढ़कर विषदन्तों को ठीक स्थान पर पहुँचा कर क्रियाशील बनाती है। उन विषदंतों से दुहरा काम निकलता है।

एक तो विष से आखेट मूर्च्छित हो जाता है। दूसरे अंकुशनुमा आकार के कारण वे जन्तु के शरीर में गड़े रहते हैं। वह सहज ही निगल जाता है।

करैत, नाग (कोबरा) तथा अन्य प्रबल विषधर नागवंशी सर्प भी इसी प्रकार शिकार को पकड़ते हैं। इनमें से बहुतों को पश्चात-वर्ती विषदंतों युक्त सर्पों की अपेक्षा अधिक बड़े जन्तुओं का शिकार करते पाया जाता है। उनके विषदन्तों में बहुत ही प्रबल विष की व्यवस्था होती है। उसका बहुत विकट प्रभाव भी होता है। नाग को किसी जंगली चूहे को शीघ्र ही पकड़ने, पराभूत करने और कव-लित करने में तनिक भी कठिनाई नहीं होती।

मंडली वंश के साँपों को शिकार मारने की क्रिया में विलक्षण शक्ति प्रदर्शित करते पाया जाता है। इनमें विषदंतों का आकार बहुत बड़ा होता है। उनके बहुत लंबे होने से विष को छोटे जन्तु के शरीर में बहुत गहराई तक प्रविष्ट किया जा सकता है। पाश्चात्य गोलार्द्ध के कर्कर या झनझनिया या अन्य रंध्रीय मंडली सर्पों में भी इसी तरह की विषदंश व्यवस्था होती है।

मंडली वंशीय सर्पों (दबोइया तथा अन्य समकक्षीय विदेशी सर्पों) के शिकार को विषदंश-क्रिया के पश्चात् पकड़े रखने की आवश्यकता कदाचित ही रहती हो। वे विद्युत् वेग से काटने की क्रिया कर मुख हटा लेते हैं। मनुष्य की आँखें तो उनके काटने की क्रियाओं को इतने अल्पकाल में सम्पन्न होने पर ठीक तरह देख भी नहीं पातीं।

जब किसी जंतु को काटना होता है तो जबड़े आगे बढ़ते हैं। वे विशाल रूप में फैल जाते हैं। गतिशील हनुअस्थियों पर स्थित अंकुशवत् विषदन्त आगे आकर काटने के ठीक स्थल के ऊपर पहुँच

जाते हैं। बढ़ने के झोंके तथा काटने के वेग के कारण वे शरीर में प्रविष्ट हो जाते हैं। उसी क्षण ऊपरी जबड़े की पेशियाँ सिकुड़ जाती हैं और विषग्रंथि दबकर विष बहाती हैं। एक ओर तो विषदंत शिकार के शरीर में धँसे होते हैं, दूसरी ओर उसी आवेग में विष की थैली दबकर विषदंतों के ऊपरी छेद में खुलती हैं। ये विषदन्त खोखले तथा नीचे नोकीले होते हैं इसलिए विष उनके भीतरी छेद द्वारा तुरन्त ही जंतु के शरीर में प्रविष्ट हो जाता है।

छोटे जंतुओं के मुख्य अंग में विषदंत का प्रवेश होने से तत्क्षण ही फल दिखाई पड़ जाता है। कुछ क्षणों के अन्दर ही जन्तु की मृत्यु हो सकती है। आक्रान्त जन्तु अपना शरीर कम्पित भी कदाचित नहीं कर पाता और अविलंब धराशायी हो जाता है। चेतना तो प्रत्येक दशा में अल्पकालीन ही हो सकती है। साँप अपनी विष-दंश-क्रिया के परिणाम की प्रतीक्षा करता है। उसे पूर्ण विश्वास रहता है कि जंतु कहीं भाग नहीं सकता।

साँपों का आहार विभिन्न प्रकार का पाया जाता है। चींटियों के अंडे से लेकर बड़े जानवरों तक को खाने वाले सर्प पाये जाते हैं। छोटे आकार के तुच्छ, भूगर्भजीवी सर्प तो केचुए (गंडूपाद) के समकक्ष से बने पाये जाते हैं इसलिए उनका आहार भी मुख्यतः कीट ही होते है। मध्यवर्ती आकार के सर्पों के शिशु भी प्रारम्भ में कीटों का आहार करते हैं। कुतरने वाले जंतुओं (कृन्तकों—चूहे, चूहियाँ आदि) को तो सारे संसार में साँपों की अनेक जातियों द्वारा आहार बनाते पाया जाता है। ये कृन्तक-भक्षी सर्प पक्षियों को भी कभी-कभी आहार बना लिया करते हैं। बहुत से साँप मेढक, सरट तथा मछली खाते हैं। बहुत-सी जातियों के सर्प केवल स्थिरतापमानी

जन्तु ही खाते हैं जिनमें स्तनपोषी तथा पक्षियों की गिनती है किन्तु इसके विपक्ष बहुतों को केवल शीतरक्तीय या अस्थिरतापमानी जंतु खाते ही पाया जाता है। इनका आहार मंडूक या समकक्षीय जंतु ही होते हैं। इन दोनों प्रकार के सर्पों को यदि विपरीत रूप का आहार दिया जाय तो वे भूखों मर जाते हैं। केवल उष्णरक्तीय या स्थिरतापमानी जंतुओं का आहार करने वाले सर्प किसी शीतरक्तीय या अस्थिरतापमानी जंतु को नहीं खा सकते। उसी प्रकार मेढक समान शीतरक्तीय या अस्थिरतापमानीय जंतु को आहार बनाने वाले सर्प चूहे, चूहियों या अन्य उष्णरक्तीय या स्थिरतापमानी जंतुओं, स्तनपोषियों, पक्षियों आदि को आहार नहीं बना सकते। परन्तु इन विशुद्धभोजियों के अतिरिक्त सर्वभोजी सर्प भी होते हैं। उनके लिए सब जंतु बराबर-से होते हैं। मूषकभक्षी या धामिन सर्प विशुद्धभोजी होता है। वह किसी सरीसृप या शीतरक्तीय जंतु को आहार नहीं बना सकता। इसी प्रकार पनिहा सर्प केवल शीत-रक्तीय जंतु खाता है। पक्षी या स्तनपोषी जंतु नहीं खा सकता। बहुत से स्तनपोषी तथा पक्षीभक्षी सर्प अंडे भी समूचे रूप में निगल जाते हैं या गले की पेशियों से तोड़ कर केवल उनके द्रव पदार्थ ही घूंट लेते हैं। समूचा अंडा निगलने वाले सर्प उदर के अंदर ही उदररस द्वारा कड़े छिल्के का पाचन कर लेते हैं। अफ्रिका का एक सर्प तो अंडे को मुँह में चीर लेने की व्यवस्था रखता है और द्रव पदार्थ ही ग्रहण करता है। अजगर प्रायः उष्णरक्तीय जंतुओं को ही आहार बनाते हैं, किन्तु कभी-कभी बड़े सरटों, गोहों, इगुवाना आदि को भी खा जाते हैं। बहुत से सर्पों को निर्विष पाया जाता है जो कृषि-संहारक जन्तुओं चूहों चूहियों आदि का नाश करते हैं। उनमें धामिन का नाम लिया जा सकता है। इनको केवल सर्प ज़ाति

का ही होने से मारना कोई बुद्धिमानी की बात नहीं कही जा सकती।

बहुत से साँप ऐसे भी पाये जाते हैं जो सहजातिभक्षी ही होते हैं। उनको अपेक्षाकृत छोटे सर्पों या अन्य जन्तुओं को आहार बनाते पाया जाता है। बहुत-से तो विषधर सर्पों को भी निगल जाते हैं जिनके विष का उनके ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। कुछ सर्प तो केवल सर्पों ही को और विशेषतया विषधरों को ही अपना आहार बनाने का प्रण-सा किये होते हैं। उनपर विषधर सर्पों के काटने का कुछ भी प्रभाव नहीं होता। मलाया का नागराज तो भयंकर सर्पभक्षी होता है। वह जहाँ तक हो सकता है अन्य जंतुओं की अपेक्षा सर्पों को ही अपना आहार बनाता है। परन्तु अपने आहार के लिए वह निर्विष साँपों को ही चुनता है। मंडली सर्पों से तो वह भय-सा खाता है। अमेरिका के उष्ण कटिबंध का मुस्सुराना साँप विशेषतया विषधर सर्पों को ही खाता है। उसका आहार केवल सर्प ही होते हैं। उस पर रंध्रीयमंडली सर्प के काटने का भी कुछ प्रभाव नहीं होता।

सहजातिभक्षी सर्प या प्रायः शीतरक्तीय जंतुओं का आहार करने वाले सभी सर्प अपना आहार अपेक्षाकृत शीघ्र पचा लेते हैं और थोड़ी ही अवधियों के पश्चात् उन्हें आहार की आवश्यकता हुआ करती है। उनको पाँच या सात दिन के अन्तर पर आहार आवश्यक होता है। बड़े तथा भारी जन्तुओं का आहार करने वाले सर्प अपना औसत भार एक-सा रखते हैं। उसको दस-बारह दिन के अन्तर से भोजन की आवश्यकता होती है। इसके मध्य भी भार एक-सा ही रहता है। जंतुओं की हड्डियाँ तथा उनके दाँत भी अपने उदररस की

सहायता से पचा डालते हैं। किन्तु बाल या पर नहीं पचता। खुर भी इसी तरह के पदार्थ का होता है। इसलिए वह भी नहीं पच-पाता। बालों की चमक तथा रंग तो उनके उदर से बाहर होने पर भी अक्षुण्ण पाया जाता है।

साँपों का प्रसार

किस प्रकार के साँपों का संसार के किस भाग में प्रसार पाया जाता है, यह एक मनोरंजन प्रसंग है। जंतु-विज्ञान या सर्प-विज्ञान के गवेषणाकर्त्ताओं ने यह तथ्य ज्ञात किया है कि उष्ण कटिबन्ध तो सरीसृपों के बाहुल्य का स्थल है, परन्तु सर्पों की अधिक जातियाँ शीतोष्ण कटिबन्धों में ही पाई जाती है। अपनी कष्टसहिष्णुता के बल पर तो सर्पों को उन शीत क्षेत्रों में भी प्रसारित पाया जाता है जहाँ अन्य सरीसृप टिक ही नहीं सकते। किसी प्रकार गड्ढों, खोहों आदि में सामूहिक रूप में दीर्घनिद्राग्रस्त होने का विधान करके कड़ाके की सर्दी ही नहीं, बल्कि चारों ओर हिम-प्रसार के वातावरण में भी छिपे पड़े पाये जा सकते हैं।

पौराणिक कथाओं में पृथ्वी के नीचे कहीं पाताल या नागलोक स्थित बताया जाता है। संयोग की बात है कि इस गोल पृथ्वी के दूसरे पार्श्व में स्थित पश्चिमी गोलार्द्ध के देश संसार भर में अधिक विभिन्न रूपों या जातियों के सर्पों का प्रसार प्रदर्शित करते हैं। अतएव सर्प-विज्ञान का शोधकर्त्ता या छात्र अपने विषय की गवेषणा का वहाँ प्रचुर प्राकृतिक क्षेत्र पाकर उसे नागलोक ही कह बैठे तो कुछ अधिक विस्मय नहीं माना जा सकता।

संयुक्त राज्य अमेरिका में सौ प्रकार के सर्पों की निर्विष जातियाँ होंगी। विषधर सर्प भी लगभग बीस प्रकार के होंगे। उधर दक्षिणी अमेरिका के उष्ण कटिबन्ध में विभिन्न प्रकार के ही विषधर सर्प

पाये जाते हैं। एक प्रकार के मण्डली सर्प (दबोइया के समकक्षीय) शल्यशीर्ष मण्डली (लांसहेड वाइपर) कहलाते हैं। उन्हें ही दक्षिणी अमेरिका के उष्ण कटिबन्ध में प्रमुख रूप में प्रसारित पाया जाता है। अनेक प्रकार के प्रवाल सर्प (कोरल स्नेक) भी होते हैं। भारी विषधर बुशमास्टर भी अपनी प्रधानता प्रदर्शित करता है। कर्कर या झनझनिया नाम का विकट विषधर दीर्घ विषदंती सर्प तो दोनों अमेरिका में ही पाया जाता है किन्तु उसका प्रमुख प्रसार दक्षिणी-पश्चिमी संयुक्त राज्य अमेरिका में है। वहाँ पर इसकी एक दर्जन जातियाँ पाई जाती हैं। उससे उत्तर के भागों में उनका प्रसार कम ही पाया जाता है। उत्तरी अमेरिका (संयुक्त राज्य) के उत्तरी पैसिफिक क्षेत्रों में केवल एक जाति ही मिलती है तथा उत्तरी-पूर्वी उत्तरी अमेरिका में केवल दो जातियों का झनझनिया (कर्कर सर्प) पाया जाता है। झनझनिया सर्प का प्रसार मुख्य प्रसार-क्षेत्र से दक्षिण भी फैला पाया जाता है। इसे दक्षिणी अमेरिका के अर्जेन्टाइना तक फैला पाया जाता है परन्तु दक्षिणी अमेरिका के उष्ण कटिबन्धीय भूभागों में केवल एक ही जाति मिलती है। यह सम्भव है कि बहुत अधिक गवेषणा करने वाले वैज्ञानिक मध्य और दक्षिणी अमेरिका के झनझनिया (कर्कर) सर्पों की कुछ अन्य जातियाँ भी ढूँढ़ निकालें परन्तु आज की वस्तु-स्थिति तो उपर्युक्त प्रकार ही है।

दोनों अमेरिका में विषधर साँप अवश्य ही प्रसारित हैं। इनमें संयुक्त राज्य का तो कोई भी ऐसा प्रदेश नहीं जहाँ विषधर सर्पों का प्रसार न हो। किसी एक प्रदेश के कुछ भागों में विषधर सर्प अपवाद स्वरूप नहीं होते। परन्तु बड़े विस्मय की बात यह है कि इन दो विशाल महाद्वीपों के मध्य चन्द्राकार रूप में प्रसारित मेक्सिको की खाड़ी तथा कैरीबियन सागर के द्वीपसमूह विषधर सर्पों से सर्वथा

शून्य पाये जाते हैं। क्यूबा, जमैका, हैटी, पोर्टोरिको आदि इस क्षेत्र के द्वीप हैं जहाँ सरीसृप तो प्रचुर रूप में प्रसारित पाये जाते हैं परंतु इन बड़े द्वीपों पर कहीं भी विषधर सर्पों का नाम नहीं। यही नहीं, पश्चिमी द्वीपसमूहों में भी कहीं विषधर सर्प नहीं पाये जाते, केवल बहुत ही दक्षिण के मार्टिनीक तथा सेंट लूसिया द्वीपों में ही विषधरों का नाम मिलता है। विषधर सर्पों से पटे पड़े भूखंडों के निकटवर्ती स्थित होने पर अन्य बड़े द्वीपों में भी विषैले सर्पों का अभाव पाया जाता है। इसका एक उत्तम उदाहरण मेडागास्कर द्वीप है जहाँ विषधर सर्पों का सर्वथा अभाव है। विषहीन सर्पों की कुछ जातियाँ अवश्य पाई जाती हैं। परंतु निकटवर्ती अफ्रीका में विषधरों की भारी बहुलता पाई जाती है।

साँपों को विभिन्न प्रकार के भूभागों में प्रसारित पाया जाता है। विभिन्न स्थानों में निवास करने के कारण उनके विशिष्ट रूप बन गए होते हैं। इस कारण मरु भूमि तक में हमें विशेष रूप के साँप मिल सकते हैं। इसके विपक्ष बहुत-से साँप वृक्षजीवी होने के कारण केवल घने जंगलों में ही पाये जाते हैं। तीव्रगामी साँपों को मैदानी भागों में जीवन-संघर्ष कर प्रसारित पाया जाता है। अर्द्ध जल जीवी साँपों को कहीं जलखंडों के तटीय भागों और नदियों के किनारे पाया जा सकता है। डाँड़ की तरह खड़े रूप की उभाड़ युक्त पूँछ के साँप समुद्रों में तैरते पाये जाते हैं जिन्हें समुद्रों में तट से हजार मील दूर तक पाया जाता है। इन सब प्रकारों में विषधर सर्पों का प्रसार-क्षेत्र विचित्रतायुक्त होता है। मानव जाति के ऊपर इनके प्रसार का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ने के कारण इनका विशेष रूप से पर्यवेक्षण तथा अध्ययन करने का उद्योग किया गया है।

पैसिफिक महासागर के मध्य स्थित हवाई द्वीपसमूहों में सर्पों

का अभाव पाया जाता है, परन्तु इसके विपक्ष एक ऐसा एकाकी द्वीप पाया जाता है जिसे निर्जन ही पाया जाता है। उस पर एक विशेष जाति के विषधर सर्प का प्रसार पाया जाता है जो संसार में अन्यत्र कहीं नहीं पाया जाता। दक्षिणी ब्राजील तट से लगभग चालीस मील दक्षिण-पश्चिम सैंटों की खाड़ी में स्थित यह चट्टानी द्वीप है जिसका क्षेत्रफल केवल तीन चौथाई वर्ग मील होगा। उसके किनारे खड़े से चट्टानी कगारों रूप में ही हैं जिन्हें सिंधु की सतत चंचल लहरें प्रक्षालित करती ही रहती हैं। इसी द्वीप पर एक शल्यशीर्ष मंडली सर्प की जाति होती है जो वृक्षचारी होती है। उसकी लंबाई तीन या चार फुट तक होती है। उसके विषदंतों में शिकार को तुरन्त मूर्च्छित कर देने के लिए प्रबल विष की व्यवस्था होती है। इस सर्प का आहार वे पक्षी ही हैं जो उस द्वीप में रहते हैं। इसे द्वीप न कह कर चारों ओर से समुद्र की लहरों की चपेट खाते रहने वाली एक बड़ी चट्टान ही कहना चाहिए।

एशिया और मलाया द्वीपसमूहों में उष्ण कटिबंधीय क्षेत्र यथेष्ट हैं, फिर भी वहाँ पश्चिमी गोलार्द्ध की तरह साँपों की बहुसंख्यक जातियाँ नहीं पाई जातीं। यह क्षेत्र तो बड़ा भारी है इस लिए यहाँ के साँपों की भारी संख्या मिल सकती है, परन्तु उनकी जातियाँ उतनी अधिक भिन्न नहीं मिल सकतीं जितनी पश्चिमी गोलार्द्ध में पाई जा सकती हैं। पूर्वी एशिया में अनेक रंध्रीय मंडली (पिट वाइपर) सर्प मिलते हैं, अपेक्षाकृत छोटे आकार के अन्य स्थलगामी तथा वृक्षगामी विषधर भी पाये जाते हैं। इनके साथ दबोइया या मंडली सर्प को भारत, मलाया द्वीपसमूह, पूर्वी द्वीपसमूह तथा कुछ अन्य द्वीपों पर पाया जाता है। यह मंडली सर्प ही एशिया का दीर्घकाय विषधर कहा जा सकता है। परन्तु यथार्थतः 'मंडली

सर्पों का प्रमुख प्रसार-क्षेत्र अफ्रीका है। योरप में मण्डली सर्पों की आधी दर्जन जातियाँ पाई जाती हैं।

करैत तथा नाग तो नागवंशी विषधरों का वंश ही बनाते हैं। इन्हें यथार्थतः पूर्वी गोलार्द्ध के विषधर सर्प की उपाधि मिलनी चाहिए। इन्हीं में नागराज (किंग कोबरा) भी होता है जो पूर्वी गोलार्द्ध का सबसे बड़े आकार का विषधर सर्प होता है किन्तु यह बहुत कम ही पाया जाता है। नागों को भी अफ्रीका में प्रमुख रूप में प्रसारित नागों का ही उत्तरी बंधु कहना चाहिए। अफ्रीका में इनकी लगभग एक दर्जन जातियाँ मिलती हैं। उत्तर के बंजर तटीय भागों और सहारा के छोरों से लेकर सहारा के दक्षिण महाद्वीप के दक्षिणी भाग तक इनका प्रसार है।

अफ्रीका को नागों तथा मंडलियों की प्रमुख प्रसार-भूमि मानना चाहिए। किन्तु मंडली सर्पों से विभिन्न उन जातियों के विषधर सर्प अफ्रीका में नहीं पाये जाते जिनकी आँख और नाक के मध्य गड्ढा होने से गर्त्त मंडली या रंध्रीय मंडलो (पिटवाइपर) नाम दिया जाता है और एक पृथक वंश ही बनाते हैं। अफ्रीका में गर्त्त मंडली सर्पों का अभाव ही नहीं होता, बल्कि मंडली सर्पों की जातियाँ भी उतनी अधिक संख्या की नहीं होती जितनी अधिक संख्या की गर्त्त मंडली जातियाँ अमेरिका में पाई जाती हैं। इतना अवश्य है कि केवल पूर्णतः निर्जीव सहारा के भागों को छोड़कर अफ्रीका के शेष सभी भागों में मंडली सर्पों को फैला पाया जाता है। इनका सिर भारी होता है, आकार भी यथेष्ट बड़ा तथा पुष्ट होता है। इस कारण इन्हें विषधरों में पुष्टकाय पाया जाता है। इधर विषदन्त भी बड़े लम्बोतरे होते हैं। रूप भी भयानक पाया जाता है। इनके अतिरिक्त दुर्बलकाय लम्बोतरे आकार के वृक्षचारी मंडली भी अफ्रीका

में पाये जाते हैं। अफ्रीका के एक मंडली सर्प का सिर पतला भी होता है। वह भूगर्भजीवी या विवरवासी होता है।

विषधर साँपों के प्रसार में आस्ट्रेलिया भी पाँचों सवारों में अपना नाम लिखाते पाया जाता है। अन्य सब देशों की अपेक्षा वहाँ के साँप विचित्र होते हैं। वहाँ पर मण्डली सर्प नहीं होता। विषहीन सर्प भी अपेक्षाकृत न्यून ही हैं। औसत आकार के कुछ अजगरों की गिनती भी उन्हीं में हो सकती है किंतु विषधरों का अभाव नहीं है। करैत तथा नाग (कोबरा) के बन्धु से नागवंशी सर्प यहाँ पाये जाते हैं। वे क्षीण शरीर तथा औसत मोटाई के मिलते हैं। उनका सिर पतला तथा अस्पष्ट होता है। ऐसा ज्ञात होता है कि अन्य देशों के विषहीन सर्पों समान ही है। आकार में सबसे अधिक विषहीन दिखाई पड़ने वाले ही सर्पों को सबसे अधिक विषधर पाया जाता है।

साँपों का श्रेणी-विभाजन

यदि साँपों की थोड़ी ही जातियाँ होतीं तो हम वैज्ञानिकों को अवश्य ही कुछ थोड़े वंशों में ही उनका श्रेणी-विभाजन करते पाते। ऐसे सरल विभाजनों में हम दाँतों की दृष्टि से माने जा सकने वाले विभाग या वंशों का नाम सुनते। जो साँप विषदन्ती नहीं हैं, उनके दाँतों को अन्य जंतुओं की भाँति ठोस (असुषिर) पाया जाता है अतएव उन्हें विषदन्तियों से पृथक समझने के लिए निर्विषदन्ती कह सकते। विषदंतियों के दाँत खोखले (सुषिर) हो सकते हैं या भीतरी भाग तो ठोस होता है और थैले से नीचे विष के बह आने के लिए खुले गड्ढे लम्बाई में इस प्रकार ही होते हैं जैसे खेत जोतने पर हल चलाने से भूमि पर खुली गली (सीता) सी बन जाती है। अतएव हल की जुताई द्वारा खुली नाली (सीता) समान लम्बाई में ऊपर तल पर गड्ढा रखने वाले विषदंत को प्रसीती (ग्रूव्ड) दन्त कह सकते हैं। खोखले विषदन्त को सुषिर विषदन्त कहना ठीक अर्थ का द्योतक हो सकता है। इनके विपक्ष ठोस (असुषिर) दाँतों को असुषिरदंत कह सकते हैं। इन दृष्टियों से बड़ी ही सुविधापूर्वक तीन विभाग बनते हैं। पहला ठोस या असुषिरदन्ती ; दूसरा प्रसीतीदन्ती और तीसरा सुषिरदन्ती। इससे भी आगे बढ़ने पर विषदन्तों को किसी में आगे के भाग में जबड़े में स्थित देखकर अग्र विषदंती विभाग माना जा सकता है। वे ही विषदन्त जबड़े के पिछले भाग में हों तो पश्च विषदन्ती कहा जा सकता है। छोटे या साधारण ही विषदन्त हों तो

साधारण विषदन्ती और बड़े आकार के हों तो दीर्घ विषदन्ती विभाग भी बन सकते हैं। यह सब विभाग तो हमारे समझने के लिए सुगम अवश्य प्रतीत होते हैं परन्तु साँपों की सैकड़ों विभिन्न रूपों की जातियाँ इतने सरल आधारों पर विभाजित कर काम नहीं चल सकता।

साँपों के श्रेणी-विभाजन का एक और प्रमुख आधार होता है। हम जानते हैं कि सर्प तथा सरट (गोह, गिरगिट, बिसतुइया आदि) को एक गण या विभाग का माना गया है। ये दोनों पृथक-पृथक उपगण या उपविभाग बनाते हैं। इसलिए इनमें बहुत कुछ साम्य भी पाया जा सकता है। इन दोनों ही उपगणों को शरीर के ऊपर छिछड़े या शल्क की व्यवस्था रक्खे पाया जाता है। यों तो मछलियों के शरीर पर भी छिछड़े ही होते हैं, परन्तु वह गलफड़ों से श्वास लेने वाला जलजीवी वर्ग ही होता है। शल्कधारी सरीसृपों के सर्प और सरट नाम के दोनों उपविभागों में कुछ जातियाँ एक दूसरे के बहुत अनुरूप जान पड़ सकती हैं। सर्प में जबड़े के अस्थि-खंड पृथक-पृथक स्वतंत्र रूप से गति कर सकते हैं, अतएव उनका यह अनिवार्य लक्षण कहा जाता है अन्यथा हमें सरटों में भी बिल्कुल लम्बोतरे आकार के जंतु मिलते हैं। सर्प का प्रमुख लक्षण रखने वाले बहुत-से जंतु केचुआ (गंडूपद) समान कहीं भूमि के अंदर बिलों में दुबके रहने वाले ही होते हैं। इनके शरीर में पिछले पैरों की स्थिति के चिन्ह स्वरूप कटिप्रदेशीय अस्थिसमूह (श्रोणिचक्र) तथा पिछले पैरों के भीतरी भाग का कुछ नाम मात्र का रूप मिलता है। पूर्वी तथा पश्चिमी अजगरों (बोआ) में भी पिछले पैरों का भीतरी भाग शरीर में बना पाया जाता है। सरटों के अन्दर हमें कुछ जातियाँ ऐसी मिलती हैं जो पैरों का लोप-सा कर सर्पाकार

शरीर बनाये मिलती हैं तो उनकी आँखों पर गतिशील पलकों को देखकर हम तुरंत उन्हें सरट उपवर्ग का कह उठते हैं। सर्प तो किसी भी वंश या जाति के हों उनकी आँखें सदा खुली, पलकहीन ही पाई जा सकती हैं। इस तरह अनेक विचारों से साँपों का वंशविभाजन करने का उद्योग किया गया है।

ऊर्ध्वदंती अंधसर्प (टाइफलोपाइडी)—इस वंश के सभी साँपों का केंचुए (गंडुपद) की तरह आकार भी छोटा है और भूमि के अंदर बिल में रहने की वृत्ति भी होती है। इस कारण इनको गंडूपदी सर्पवंश कहें तो ठीक है। कहीं भूमि के अन्दर से इन्हें बाहर लाकर छोड़ा जाय तो तुरन्त ही मिट्टी खोदकर भीतर घुस जाने की वृत्ति इनमें पाई जाती है। इनमें सबसे बड़े साँपों की लम्बाई चौदह इञ्च तक पहुँचती है। इनका प्रसार पूर्वी तथा पश्चिमी गोलार्द्धों में उष्णतर भूभागों में पाया जाता है। इतने छोटे रूप के साँपों की भी सौ जातियाँ तक निर्धारित की गई हैं। इनके शरीर का शल्क (छिछड़ा) चिकना, गोलाकार तथा चमकीला होता है। आँख क्या होती है, उसे तो माथे में अधमुन्दा-सा धुंधला बिंदु ही कह सकते हैं। दाँत उपहास योग्य ही होते हैं जिनका होना, न होना बराबर ही समझा जा सकता है। इनके शरीर का रङ्ग भूरा होता है। उस पर किसी प्रकार के चित्रण, धब्बे, पट्टियों आदि का नाम भी नहीं होता।

गंडूपदी सर्पों के क्षुद्र रूप में भी पिछले पैरों का अवशिष्ट-सा भाग त्वचा के अन्दर छिपा मिलता है। कटिप्रदेशीय अस्थिमंडल या श्रोणिचक्र का भी बचा-खुचा रूप मिलता है। ऐसा ज्ञात होता है कि प्राची सर्पों की जातियाँ अपने शरीर का विकास भूमि के अंदर बिल में छिपे रह सकने के लिए कर सकीं। उन्हीं का यह रूप है।

प्राचीन काल में इनके पूर्वजों का अवश्य ही विस्तृत क्षेत्रों में प्रसार रहा होगा क्योंकि दूर स्थित द्वीपों में भी इन्हें पाया जाता है जो आज भूखण्डों से पृथक हैं परन्तु पूर्वकाल में कभी महाद्वीपों के संलग्न भाग ही रहे होंगे। दक्षिणी सागर के द्वीपसमूहों से बिल्कुल दूर एकाकी स्थित क्रिस्टमस द्वीप में भी इन्हें पाया जाता है। इस वंश का प्रसार दक्षिणी योरप, एशिया, मलाया द्वीपसमूह, अफ्रीका, उष्णकटिबंधीय अमेरिका और पश्चिमी द्वीपसमूह में है।

अधोदंती अंधसर्प (लेप्टोटाइफलोपाइडी)—इस वंश के साँप भी गंडूपदो सर्प वंश समान ही छोटे गोलाकार शरीर के होते हैं। उनका शरीर केंचुओं-सा ही चमकीला होता है। गंडूपदी सर्पवंश में तो ऊर्ध्व हनु (ऊपरी जबड़े) की हड्डी से आड़े किनारों पर नाम मात्र के दाँत होते हैं परन्तु अधोदंती गंडूपदी में निचले जबड़े में भी नाम मात्र के दाँत होते हैं। इनमें कटिप्रदेशीय अस्थिमंडल या श्रोणिचक्र भी अधिक स्पष्ट पाया जाता है। इस वंश में तीस जातियाँ होती हैं। इनका प्रसार दक्षिणी संयुक्त राज्य, उष्णकटिबंधीय दक्षिणी अमेरिका, पश्चिमी द्वीपसमूह, एशिया तथा अफ्रीका में है।

अजगर वंश (बायडी)—अजगरों को ऊपर से देखने पर अपना ठीक मर्म प्रकट करते नहीं पाया जाता परन्तु वैज्ञानिकों ने उनके कपाल की अस्थियों का विभिन्न रूप पाकर दो स्पष्ट पृथक अनुवंश निर्धारित किया है। इनमें एक को पश्चिमी अजगर या बोआ अनुवंश कहते हैं। दूसरा पाइथन या पूर्वी अजगर अनुवंश कहलाता है।

पाइथन या पूर्वी अजगर अनुवंश में बीस से अधिक जातियाँ पाई जाती हैं। इनका प्रसार एशिया, मलाया द्वीपसमूह, अफ्रीका, और आस्ट्रेलिया में पाया जाता है। लेकिन एक जाति दक्षिणी मेक्सिको में पाई जाती है जो इसी वंश को है। उसे लोक्सोसीमस

प्रजाति का अजगर कहा जाता है। पूर्वी गोलार्द्ध के जो बड़े से बड़े अजगर हैं उन्हें इस अनुवंश में गिना जाता है। अमेरिका में जो अजगर पाये जाते हैं उनको दक्षिणी मेक्सिको वाली लोक्सोसीमस प्रजाति से विशेष विभेद प्रकट करते पाया जाता है।

पश्चिमी अजगर अनुवंश को बोआ कहते हैं। ज्ञान-विज्ञान का अधिक प्रचार तथा अनुशीलन होने से अमेरिकीय या पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने बोआ से निकट का परिचय होने तथा उसी का पहले परिचय होने से सभी अजगरों को बोआ के नाम पर ही "बायडी" वंश नाम रक्खा है। अपनी परिचित वस्तु से ही साम्य या वैषम्य प्रकट कर अन्य वस्तुओं का परिचय देना मनुष्य की स्वाभाविक वृत्ति होती है। यदि पूर्वी गोलार्द्ध के दीर्घकाय साँपों, पाइथन या अजगर का ही नाम सामने रखकर वैज्ञानिक शब्दावली को गढ़ने का अवसर हो तो इन दोनों अनुवंशों का कोई भी एक नाम का वंश प्रकट करने के लिए यदि पाइथन वंश या पाइथाइडी नाम ही रख लिया जाय तो उसको असंगत या अनुचित नहीं कहा जा सकता। किन्तु नाम कुछ भी रक्खे जायँ, हमें तो उनका विहंगम रूप ही ज्ञात करना अभीष्ट है।

बोआ या पश्चिमी अजगर अनुवंश में चालीस जातियाँ होंगी। यह अनुवंश पूर्वी अजगर अनुवंश से बड़ा है। पूर्वी अजगरों की अपेक्षा पश्चिमी अजगर अनुवंशी साँपों की संख्या दुगुनी है। इस अनुवंश का प्रसार पूर्वी तथा पश्चिमी दोनों ही गोलार्द्धों में है, अतएव पश्चिमी अजगर अनुवंश कुछ भ्रामक नाम हो सकता है। फिर भी कोई दूसरा सुबोध नाम न ज्ञात होने से यही प्रचलित किया जा सकता है। यदि बोआ अनुवंश भी कहें तो कोई अनुचित नहीं। इस अनुवंश

में यथार्थतः एक ही प्रजाति ऐसी होती है जो पूर्वी अजगर अनुवंश के भीमकाय अजगरों से समता कर सकती है।

बोआ अनुवंश के दीर्घकाय सर्पों का प्रसार केवल पश्चिमी गोलार्द्ध में है। इनकी जातियों को पहले बोआ प्रजाति नाम से प्रसिद्ध करते थे। अब उनको ही कंस्ट्रिक्टर का कुंडलबंधक प्रजाति कहने लगे हैं। इस प्रजाति के अजगरों की लम्बाई आठ या दस फुट तक होती है, परन्तु एक जाति की लम्बाई पन्द्रह फुट तक भी पाई गई है। इन दीर्घकाय अजगरों को अमेरिका के उष्ण कटिबन्धीय भूभागों में पाया जाता है परन्तु इसी कुंडलबंधक (कांस्ट्रिक्टर) प्रजाति की एक जाति पूर्वी गोलार्द्ध में मेडागास्कर द्वीप में भी पाई जाती है। ग्रहण-शील पूँछों के वृक्षचारी बोआ या पश्चिमी अजगर की चार जातियाँ उष्ण कटिबंधीय अमेरिका में पाई जाती है, परन्तु इसी तरह की जाति का वृक्षचारी पश्चिमी अजगर या बोआ मेडागास्कर द्वीप में भी पाया जाता है। अपनी पूँछ को शाखाओं में लपेट कर शरीर को अवलंबित कर सकना इन अजगरों की विशेषता होती है।

पूर्वी तथा पश्चिमी दोनों ही अजगरों की छोटी जातियाँ विवर-वासिनी भी पाई जाती हैं, परन्तु पश्चिमी अजगर या बोआ में यह प्रवृत्ति अधिक विकसित पाई जाती है। इस तरह की छोटी जातियों का प्रसार दक्षिणी-पश्चिमी संयुक्त राज्य, दक्षिणी एशिया तथा उत्तरी अफ्रीका में पाया जाता है। बोआ अनुवंशी अजगरों का प्रसार-क्षेत्र पश्चिमी तथा दक्षिणी-पश्चिमी संयुक्त राज्य, सम्पूर्ण उष्ण-कटिबंधी अमेरिका, पश्चिमी द्वीपसमूहों का अधिकांश भाग, मलक्का, न्यूगिनी, दक्षिणी एशिया और उत्तरी अफ्रीका में पाया जाता है। भारत महासागर में मारीशस द्वीप के निकटवर्ती राउंड द्वीप में भी इसकी कुछ जातियाँ मिलती हैं।

उभयदन्ती गंडूपद सर्पवंश (एनिलाइडी)—जिस प्रकार बिल में रहने वाले क्षुद्रकाय साँपों में एक वंश का केवल ऊपरी हनु में नन्हें दाँत की व्यवस्था से ऊर्ध्वदन्ती नाम पड़ा है या दूसरे वंश को केवल निचले जबड़े में क्षुद्र दाँतोंयुक्त होने से अधोदन्ती गंडूपद या अंध सर्प कहते हैं, उसी प्रकार एक वंश दोनों ही हनुओं या जबड़ों में दाँत रखने से उभयदन्ती गंडूपद कहला सकता है जिसका जीवन गंडूपद से कुछ अधिक उत्तम न दिखाई पड़ सकता हो। इन साँपों का आकार एक गज तक लंबा पाया जाता है। कटिप्रदेशीय अस्थि समूह या श्रोणिचक्र का नाम मात्र पाया जाता है। पिछले पैरों की भी स्थिति स्मरण कराने के चिन्ह बहुत धुँधले रूप में मलद्वार के निकट चंगुलनुमा काँटे या उभाड़ से ज्ञात हो सकते हैं। इन सर्पों का आकार बेलननुमा होता है और बिल में निवास करते हैं। इस वंश की अनेक जातियों का शरीर बहुत विशद रूप का रंगा होता है। उष्ण कटिबंधीय अमेरिका का एक साँप चमकदार प्रवालीय रक्तवर्ण का होता है। उस पर काले रंग की मुद्रिकाएँ अंकित होती हैं। इस वंश का प्रसार दक्षिणी अमेरिका, सिंहल (सीलोन), हिन्दचीन तथा मलाया क्षेत्रीय भूभागों में पाया जाता है। इसकी बारह जातियाँ मिलती हैं।

विपुच्छ उभयदन्ती (उरोपेल्टाइडी)—इस वंश का क्या नाम रक्खा जाय, यह टेढ़ा प्रश्न है। पिछले पैरों या श्रोणिचक्र का तो नाम ही नहीं होता किन्तु उभयदंती गंडूपद सर्पों से अन्य रूपों में समानता पाई जाती है। एक विशेष अंतर यह होता है कि पूँछ नन्हीं-सी बांड़ी या कटी-सी होती है। इसलिए इसे विपुच्छ ही कहा जा सकता है। आँखें अत्यन्त छोटी होती हैं। शरीर का रंग बहुत सुन्दर होता है। शरीर छोटा, दृढ़, गोल तथा पुष्ट होता है। इसकी ४५ जातियाँ हैं। भारत तथा सिंहल का ही यह सर्प है।

तालुदन्ती सर्प वंश (क्सेनोपेल्टाइडी)—इस वंश की एक ही प्रजाति है। उसमें एक ही जाति होती है जो बिल में रहने वाली होती है। इसके ऊपरी हनु में तालु के स्थान पर एक दाँतों की अतिरिक्त पंक्ति होती है। इसलिए इसे तालुदन्ती वंश कहना उचित है। इसके कपाल की अस्थियाँ संयुक्त होती हैं इसलिए इस वंश को अखंड कपाली वंश कहें तब भी युक्तिसंगत नाम हो सकता है। इसके शल्क अत्यन्त चिकने और चमकीले होते हैं। इस कारण इस साँप को रविकिरण सर्प भी कहा जाता है। इसका प्रसार दक्षिणी बर्मा (उत्तर में मिचकिना तक), थाईलैंड, हिन्द चीन, मलाया प्रायद्वीप तथा द्वीपसमूह में है। ऐंडमन तथा दक्षिणी चीन में इसके पाये जाने के उदाहरण हैं।

तालुदंती सर्प धान के खेतों तथा बस्ती के निकट बाग-बगीचों में पाया जाता है। भूमि के अंदर या पथरीले ढोंकों, लट्ठों आदि के नीचे दुबका पड़ा रहता है। नर्म मिट्टी में बड़ी ही तीव्रता से घुस जाता है। कदाचित रात को ही निकलता है और दिन को मिट्टी में छिपा रहता है। यह विषहीन सर्प है। हाथ पर उठा लेने पर भी काटने का प्रयत्न नहीं कर सकता। उद्विग्न किये जाने पर अपनी नन्हीं-सी दुम द्रुत वेग से कंपित करता है। इसका आकार साढ़े तीन फुट लंबा हो सकता है। उसमें पूंछ की लम्बाई चार इञ्च होती है। इसका मुख्य आहार अन्य सर्प, छोटे कृन्तक जंतु तथा मेढक होते हैं। पक्षी खाने के उदाहरण भी उल्लिखित मिलते हैं।

इसके शरीर का रंग ऊपरी तल पर भूरा चमकीला होता है। पार्श्व भागों के शल्क दल में श्वेत किनारी होती है। स्कंध देशीय शल्क श्वेत होते हैं जिन पर भूरी किनारी हो सकती है।

साधारण सर्प वंश (कोलुब्राइडी)—इस वंश में इतने अधिक

विभिन्न रूप के सर्प हैं कि उन्हें अनेक अनुवंशों में विभाजित किया गया है। यथार्थ में इसे मिश्रित ढंग का वंश कहा जा सकता है। जो स्वतंत्र रूप से पृथक वंश का नाम नहीं बन सकतीं, उन सब जातियों को इस वंश में डाल दिया गया है। परिणाम यह होता है कि शोधकार्य अग्रसर होने पर अनुवंशों को घटता-बढ़ता पाया जाता है। अनुवंशों का निम्न रूपों में संक्षिप्त परिचय दिया जा सकता है :—

असुषिरदन्ती जलसर्प (एक्रोकोर्डाइनी)—इस अनुवंश के साँप निर्विष होते हैं। दाँत ठोस (असुषिर) होते हैं। शरीर पर छोटे दानेदार छिछड़े होते हैं। छिछड़ों का रूप अधिकांश जातियों में शरीर के निचले तथा ऊपरी तल पर एक समान ही होता है। ये जलजीवी होते हैं और नदियों के समुद्र द्वारा आप्लावित होने वाले भाग तथा समुद्रों में पाये जाते हैं। इनका प्रसार समुद्र-तटीय भागों में दक्षिणी-पूर्वी एशिया (भारत, थाईलैंड, हिन्दी चीन, मलाया प्रायद्वीप और द्वीपसमूह), न्यूगिनी तथा उत्तरी आस्ट्रेलिया के समुद्री तट हैं। यह पूर्वी गोलार्द्ध का ही सर्प वंश है परन्तु इसकी एक जाति मध्य अमेरिका में भी पाई जाती है।

निर्विष सर्प अनुवंश (कोलुब्राइनी)—इस उपवंश में एक हजार जातियाँ पाई जाती हैं। उन्हें डेढ़ सौ प्रजातियों में विभाजित पाया जाता है। इन सब में दाँतों का आकार विभिन्न होता है। कुछ में तो सब दाँत एक लम्बाई के होते हैं। कुछ में आगे की ओर के दाँत बड़े हो सकते हैं तथा कुछ जातियों में पीछे की ओर के दाँत बहुत बड़े हो सकते हैं या कुछ अंश में खुली नाली (प्रसीता) युक्त हो सकते हैं किन्तु इस अनुवंश के किसी भी सर्प में विष-उत्पादक ग्रंथियाँ नहीं होतीं। इन सर्पों का विभिन्न आकार होता

है। कोई तो एक फुट ही लम्बे होते हैं परन्तु धामिन को दस फुट लम्बा पाया जाता है। कोई सर्प मोटा होता है तो कोई बेंत-सा पतला या लता सा लम्बोतरा तथा क्षीणकाय होता है और वृक्षजीवी होता है। कुछ अर्द्ध जलजीवी ही होते हैं।

अंडछेदक सर्प अनुवंश (डैसीपेल्टाइडी)—यह उष्ण कटिबंधीय तथा दक्षिणी अमेरिका का सर्प है। इसकी एक ही जाति होती है, परंतु विचित्रता के कारण एक अनुवंश निर्धारित करना पड़ता है। इसकी गर्दन में रीढ़ की हड्डियों के उभाड़ इस प्रकार बढ़े होते हैं कि अंडा निगलने पर उसे गर्दन में पहुँचने पर चीर देते हैं। मुँह छोटा होने से यह समूचा अंडा निगल सकने में समर्थ नहीं होता। इस कारण अंडे के खंडित होने से द्रव खाद्य पदार्थ ही निगलता है और छिल्के को उगल देता है। इसका आहार मुख्यतः पक्षियों के अण्डे होते हैं।

पिंडमुखी सर्प अनुवंश–(ऐम्बलीसेफालाइनी)—इस अनुवंश को पूर्वी गोलार्द्ध के शुद्ध निर्विष सर्प अनुवंश का ही अमेरिकीय प्रतिरूप कह सकते हैं। यह वृक्षजीवी जाति है। ये सर्वथा निर्विष होते हैं। गर्दन तो छोटी दुर्बल ही होती है, परन्तु मुख बड़े आकार का होता है। फिर भी उसके हनु के नीचे मध्यवर्ती फटान या गड्ढा नहीं होता। इस कारण यह पिंड या ढोंके सा मुँह अधिक खोल नहीं सकता। बड़े शिकारों को निगल सकना इस अनुवंश के साँपों के लिए कठिन होता है। इसीलिए पिंडमुखी नाम है।

अल्प विषदन्ती सरिता सर्प · (होमालोप्साइनी)—इस अनुवंश के सांपों में ऊपरी जबड़े के पिछले भाग में विषदन्त होते हैं जो प्रसीती (खुली नाली समान गड्ढेयुक्त) दोते हैं। उन विषदंतों से छोटी विषैली थैली भी संयुक्त होती है। उससे स्रवित विष का उपयोग शिकारों को मूर्च्छित करने के लिए होता है। किन्तु इनका

विष उतना प्रबल नहीं होता जितना भयंकर विषैले साँपों का होता है। इस अनुवंश में लगभग दो दर्जन जातियाँ होंगी। इनका प्रसार दक्षिणी एशिया, मलाया क्षेत्र, न्यूगिनी तथा उत्तरी आस्ट्रेलिया में है। ये साँप नदियों में पाये जाते हैं।

पश्च विषदन्ती अनुवंश (बायगिनी)—यथार्थ में साधारण सर्प-वंश में जितनी निर्विष जातियों के रूप होते हैं, वे प्रायः इन पश्च विषदन्ती उपवंश में दुहराये जान पड़ते हैं। कोई कुण्डलीधारी होता है, कोई तीव्रधावक होता है, कोई बेंतनुमा या लतानुमा लम्बोतरा पतला होता है तथा कोई जलजीवी होता है। स्थूल या पिंडमुखी सर्पों का भी रूप इनमें पाया जा सकता है। इस वंश में लगभग तीन सौ जातियाँ होती हैं। इनका प्रसार पूर्वी तथा पश्चिमी, दोनों ही गोलार्द्धों में उष्णतर भूभागों में है।

पश्च विषदन्ती अंडछेदक (एलाचिस्टोडोन्टाइनी)—जिस प्रकार अंडछेदक अनुवंश में रीढ़ की हड्डी (कशेरुका) गले में बढ़ी रह कर अंडों को चीरने का काम देती है, उसी तरह इस अनुवंश के साँपों में भी व्यवस्था होती है परन्तु उसके अतिरिक्त जबड़े के पिछले भाग में विषदन्त भी होते हैं। इसी कारण इस उपवंश का संयुक्त गुणों या लक्षणों के कारण इतना बड़ा नाम रक्खा जा सकता है। इस उपवंश का निर्धारण केवल इस विचित्रता के कारण ही किया गया है अन्यथा इसकी एक ही प्रजाति होती है जिसमें केवल एक जाति पाई जाती है। इस जाति के सर्पों का प्रसार बंगाल में जलपाईगुड़ी तथा बिहार में पूर्णिया जिले में है। इस साँप की लम्बाई ३२ इंच हो सकती है जिसमें पूँछ पाँच इंच लम्बी होती है। इसका रंग ऊपरी तल पर जैतूनी भूरे से कलौंछ तक होता है। पीठ के बीच श्वेत पीली-सी लम्बी पट्टी होती है।

नाग वंश (एलापाइडी)—नाग वंश के सर्प विकटतम विषधरों में से हैं। संसार के प्रसिद्ध विषैले साँप इस वंश में पाये जाते हैं जिनमें भारत के करैत, नाग, नागराज, अफ्रीका के मम्बा तथा आस्ट्रेलिया के काले सर्प, व्याघ्र सर्प आदि हैं। यह वंश मुख्यतः पूर्वी गोलार्द्ध का है जहाँ इसकी डेढ़ सौ जातियाँ पाई जाती हैं। पश्चिमी गोलार्द्ध में प्रवालीय (मूँगे समान) सर्प ही इस वंश के हैं जिन्हें एक प्रजाति का माना जाता है। उसकी दो जातियाँ दक्षिणी संयुक्त राज्य में तथा दो दर्जन जातियाँ उष्ण कटिबन्धीय अमेरिका में पाई जाती हैं।

नागवंशी सर्प अग्रविषदन्ती होते हैं जिनका यह अर्थ है कि जबड़े के अगले भाग में ही विष के दाँत होते हैं। उनकी जड़ में बड़े आकार की विषथैलियाँ होती हैं जिनमें बड़ा घातक विष भरा रहता है।

जलनाग (हाइड्रोफाइडी)—विषैले सर्पों में नाग के अनुरूप सर्प जलखंडों में भी पाये जाते हैं। उन्हें जलनाग कहना उचित है। जल-जीवन के कारण उनमें कुछ विशेष शारीरिक व्यवस्था हुई रहती है। ये नागों की तरह ही विषैले दाँत रखते हैं तथा समुद्रों में रहने के अभ्यस्त होते हैं। इनकी पूँछ डाँड़नुमा खड़े रूप में चपटी होती है। बहुतों का शरीर भी खड़े रूप में चिपटा होता है जिससे तैरने में सुविधा हो। इनका शरीर दो फुट से लेकर आठ फुट तक लम्बा होता है। लगभग पचास जातियाँ पाई जाती हैं। इनका प्रसार भारतीय महासागर तथा उष्ण कटिबन्धीय पश्चिमी पैसिफिक महासागर में है। तट से हजार मील दूर तक भी मिलते हैं। दक्षिणी मेक्सिको, मध्य अमेरिका तथा दक्षिणी अमेरिका के पश्चिमी तट के समुद्र में भी ये पाये जाते हैं।

पृदाकु या मण्डली वंश (वाइपराइडी)—मण्डली या मण्डली वंश के साँपों का प्रमुख प्रसार-क्षेत्र अफ्रीका ही है। योरप, एशिया तथा पूर्वी द्वीपसमूहों में भी ये पाये जाते हैं। इन्हें पश्चिमी गोलार्द्ध में नहीं पाया जाता। इस वंश की लगभग पचास जातियाँ पाई जाती हैं जिनमें बड़े आकार तथा भारी संख्या की जातियाँ अफ्रीका में होती हैं। इन सब जातियों के विषदन्त नागों के विषदन्तों की अपेक्षा बहुत ही बड़े होते हैं अतएव इस वंश को दीर्घ विषदन्ती कहना भी अनुचित नहीं हो सकता। विषैले दाँतों की अत्यधिक लम्बाई होने के कारण उन्हें एक गतिशील अस्थि में मढ़ा पाया जाता है जिससे उन्हें मोड़ कर तालु में दबा सकें अन्यथा मुख को बन्द करना ही कठिन हो।

पृदाकु वंशी अधिकांश सर्पों को पुष्टकाय पाया जाता है। कुछ तो अत्यधिक पुष्ट होते हैं। सिर चपटा तथा स्पष्ट प्रदर्शित होता है। कुछ वृक्षजीवी पृदाकुओं को कृशकाय तथा लम्बोतरा पाया जाता है। उनका सिर विशेष रूप से चपटा और प्रत्यक्ष होता है। अधिकांश में आँख की पुतली खड़ी रेखा-सी होती है।

कपाल-रंध्रीय पृदाकु वंश (क्रोटेलाइडी)—आँख और नाक के मध्य गर्त्त या रंध्र होने से इन साँपों को कपोल-गर्त्तीय या केवल गर्त्त-पृदाकु कह सकते हैं। इस वंश की अस्सी जातियाँ पाई जाती हैं। इनका प्रसार पूर्वी तथा पश्चिमी दोनों ही गोलार्द्धों में पाया जाता है किंतु इनको पश्चिमी गोलार्द्ध में ही विविध रूप प्राप्त किये पाया जाता है। वहाँ पचास जातियाँ होंगी किंतु पूर्वी गोलार्द्ध में तीस ही जातियाँ मिलती हैं। पूर्वी गोलार्द्ध में इनका प्रसार कैस्पियन सागर तटों, एशिया और मलाया क्षेत्र में है। अफ्रीका में कोई जाति नहीं है।

गर्त्त पृदाकु या मंडली वंश के सर्पों में बहुत प्रसिद्ध सर्प कर्कर या झनझनिया होते हैं जिनका प्रसार केवल पश्चिमी गोलार्द्ध में ही पाया जाता है। कपालरंध्रीय या गर्त्तपृदाकु वंश में सबसे विकराल साँप उष्ण कटिबन्धीय अमेरिका के क्षुपराज या बनराज सर्प (बुश मास्टर) होते हैं। उनकी लम्बाई बारह फुट तक होती है। इसके विपक्ष इसी वंश में कुछ जातियों के साँप क्षुद्र तथा कृशकाय और वृक्षचारी भी होते हैं। किन्तु इस वंश के सभी साँपों के विषदन्त एक से ही अत्यधिक लम्बे और मंडली सर्पों की तरह मुड़ कर तालु में चिपक सकने योग्य होते हैं।

अजगर वंश

पूर्वी तथा पश्चिमी अजगर विषहीन सर्पों में गिने जाते हैं। उनके ऊपरी जबड़े में दाँतों की दो पंक्तियाँ होती है जिनमें आगे की ओर से पीछे की ओर दाँतों का आकार क्रमशः छोटा होता जाता है। उनमें से किसी में भी खोखला या खुली नाली (प्रसीता) का रूप नहीं होता जो विषधर साँपों की ही विशेषता होती है। इनका शरीर कुछ न कुछ खड़े रूप में पिचका होता है। इनकी पूँछ ग्रहणशील होती है। विशुद्ध अजगर जिन्हें चट्टानों के मध्य प्रायः रहने से चट्टानी सर्प भी कहा जाता है दूर-दूर के क्षेत्रों तक प्रसारित पाये जाते हैं। इनके प्रसार-क्षेत्र दक्षिणी-पूर्वी एशिया, आस्ट्रेलिया तथा मध्य और दक्षिणी अफ्रीका हैं।

भारतीय या कृष्णपुच्छ अजगर (पाइथन मोलफरस) को सबसे बड़े आकार के अजगरों में गिना जाता है। उसके २५ फुट तक लंबे होने के प्रमाण मिलते हैं। इनकी रीढ़ में ४०० कशेरुकाएँ तक मिलती हैं। शिकार का प्राणान्त करने के लिए अपने अन्य बन्धु सर्पों की भाँति यह भी अपनी कुण्डली को उसके चारों ओर पाशबद्ध करता है। कुण्डली के कसते जाने से शिकार निष्प्राण हो जाता है। मृत शिकार को वह समूचा निगल जाता है जिसका सिर ही पहले उदरस्थ करता है। कुण्डली-पाश से जन्तु का कंकाल यों ही विखर गया होता है। उन पर वह अपनी लसिका (थूक) का बहुत अधिक उपयोग कर चिकनाहट उत्पन्न कर लेता है। इस कारण निगलना

कठिन नहीं होता। शिकार को निगलने के लिए मुख का अत्यधिक प्रसार आश्चर्यजनक होता है। उदर में शिकार को पहुँचाने के बाद वह कहीं निष्क्रिय-सा ही पड़ा रहता है।

भारतीय अजगर (पाइथन)—यह सर्प संसार में सबसे बड़े साँपों में से है। इसकी लम्बाई २५ फुट तक होती है। इस जाति के दो रंग होते हैं किन्तु दोनों में सिर पर बाण के आकार का धब्बा बना होता है। बदन का रंग धुँधला रखने वाली उपजाति के अजगर पश्चिमी पाकिस्तान और भारत के मध्य और पश्चिमी भाग तथा दक्षिण में मद्रास तक पाये जाते हैं। दूसरी उपजाति अपेक्षाकृत गहरे रंग की होती है और पहली उपजाति के आकारों से उसका आकार भी बड़ा होता है। इसका प्रसार पूर्वी भारत, मलाया प्रायद्वीप और जावा में पाया जाता है।

चित्र १—भारतीय अजगर

भारतीय अजगर दो रंगों का पाया जाता है। एक का रंग

गहरा जैतूनी होता है तथा कलौंछ धब्बे होते हैं। दूसरे का रंग धूमिल धूसर तथा चमड़े-सा गहरे बादामी रंग का होता है। इसका सिर हल्का गुलाबी होता है। इसका प्रसार पश्चिमी भारत और पाकिस्तान में पाया जाता है। इसकी लम्बाई भी १५-१६ फुट ही होती है। अधिकतर इसी अजगर को मदारी खेल दिखाने के लिए पकड़ कर पालते हैं। दूसरा अजगर पालने में कष्टप्रद होता है।

एक वैज्ञानिक ने भारतीय अजगर की उपजातियों का निम्न वर्णन दिया है :—

(१) हल्का रंग होता है। अधिकांश भाग में शरीर के पार्श्व भागों में बड़े धब्बों के आंतरिक भाग में हल्का रंग होता है। बड़े धब्बों की केवल तीन पंक्तियाँ होती हैं। एक तो पृष्ठवर्ती होती है तथा दो पार्श्ववर्ती होती हैं। सिर का त्रिभुजाकार धब्बा केवल पिछले दो-तिहाई भाग में दिखाई पड़ता है। इसका प्रसार पाकिस्तान पश्चिमी पाकिस्तान और पश्चिमी तथा दक्षिणी भारत में करांची से मद्रास तक है।

(२) रंग अपेक्षाकृत गहरा होता है। पृष्ठभूमि की अपेक्षा धब्बे अधिक स्पष्ट बने होते हैं। पार्श्व भाग के धब्बों का आंतरिक भाग हल्के रंग का नहीं होता। पृष्ठवर्ती तथा पार्श्ववर्ती धब्बों की पंक्ति के मध्य दोनों ही ओर लम्बोतरे छोटे धब्बों की दूसरी लंबी पंक्ति होती है। सिर के ऊपर का त्रिभुजाकार धब्बा थूथन के एक विन्दु तक दिखाई पड़ता है। यह पहली उपजाति से अधिक बड़ा होता है। भारत के उत्तरी पूर्वी भाग, बर्मा, मलाया आदि में पाया जाता है।

अजगरों को एक बार शिकार निगल लेने के पश्चात् कई मास तक निराहार रह सकने में समर्थ पाया जाता है। एक बड़ा भारतीय अजगर खरगोश, भेड़, बछड़े तथा कुछ छोटे आकार के मृगों को

खाकर सन्तुष्ट होता है। यदि मनुष्य भी निहत्थे रूप में अकेले उसके कुण्डली-पाश में पड़ जाय तो उसका प्राण बचना कठिन हो जाय।

भारतीय अजगरों की तुलना करने वाला दूसरा अजगर रेखा-जालांकित (पाइथन रेटिकुलेटस) अजगर होता है। इसका प्रसार बर्मा, थाईलैण्ड और मलाया क्षेत्र में पाया जाता है। इसकी ३३ फुट से भी अधिक लम्बाई का प्रमाण मिलता है। किंतु यथार्थ में इससे कम लम्बाई के अजगर ही वर्तमान समय में प्रत्यक्ष देखे जा सकते हैं। कोई भी अजगर किसी भी जन्तुशाला को ३० फुट लम्बाई तक का कभी नहीं मिल सका है। २०-२५ फुट लम्बाई यथेष्ट ज्ञात होती है। औसत लम्बाई २० फुट ही मानना चाहिए। इन सर्पों की ऊपरी शल्कीय खाल पर सूर्य की किरणें पड़ने से बड़ा ही विशद रूप प्रकट होता है।

रेखा-जालांकित या मलय अजगर (पाइथन रेटिकुलेटस) की भारतीय अजगर से यह विभिन्नता होती है कि मलय अजगर के सिर का रंग सपाट रूप का भूरा होता है। उसके मध्य थूथन से गर्दन तक एक पतली काली रेखा बनी होती है। कृष्णपुच्छ या भारतीय अजगर (पाइथन मोल्यूरस) के सिर पर दूसरा चिन्ह होता है। सिर के अधिकांश भाग पर एक काला धब्बा होता है। उसका आकार भाले के मुख की तरह होता है जो आगे की ओर निर्देशित होता है। कृष्णपुच्छ अजगर मलाया, सुमात्रा और जावा में भी पाया जाता है।

अफ्रीका में २० फुट के अजगर पश्चिमी तट पर पाये जा सकते हैं। पूर्व और दक्षिण में नेटाल तक इसे प्रसारित पाया जाता है। इसे लोग नेटाली शिला सर्प (पाइथन सीबी) कहते हैं। इसकी औसत लंबाई १६-१७ फुट होती है।

यह तो बड़े आकार के अजगरों की बात हुई। परन्तु अन्य

प्रकारों के अपेक्षाकृत छोटे अजगर भी होते हैं। आस्ट्रेलिया और न्यूगिनी का हीरक अजगर (पाइथन स्पिलोटीज) चौदह फुट लंबा पाया जाता है। उसकी औसत लम्बाई आठ फुट ही माननी चाहिए। पश्चिमी अफ्रीका में एक बहुत सुन्दर और पुष्ट अजगर पाया जाता है जिसकी औसत लम्बाई लगभग पाँच फुट पाई जाती है। इसे कन्दुक या गेंद अजगर (पाइथन रीगियस) भी कहते हैं, क्योंकि इसमें यह गुण होता है कि भयग्रस्त होने पर कुंडली बनाकर ऐसा गोले रूप में सिमट जाता है मानो कोई बड़ी गेंद या फुटबाल ही हो। सिर तथा पूंछ को इस गोलाई के भीतर ही छिपा लेता है। उसे दस बारह फुट तक हाथ से लुढ़का भी दें तब भी वैसी ही स्थिति में सिकुड़ा पड़ा रहता है। इसके शरीर का रंग भूरा होता है जिस पर बड़े और मझोले आकार के धब्बों की माला-सी होती है जिनमें प्रत्येक भव्य पीली किनारियोंयुक्त होते हैं।

कुछ अजगर अत्यन्त छोटे होते हैं तथा कुछ विवरवासी होते हैं। दक्षिणी मेक्सिको में एक एकाकी पूर्वी अजगर जाति (लोक्लो-सीमस बाइकलर) पाई जाती है जिसे मेक्सिको वामन अजगर कह सकते हैं।

पूर्वी गोलार्द्ध में ही पूर्वी अजगरों की जातियाँ प्रसारित पाकर इस मेक्सिको वामन अजगर नामक एकाकी जाति को मेक्सिको में पाना बड़े विस्मय की बात है। परन्तु यह अजगर पश्चिमी अजगर (बोआ) से भिन्न होता है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह पाया जा सकता है कि इसकी पूँछ के निम्न तल पर शल्कों की दोहरी पंक्ति होती है, परंतु उत्तरी अमेरिका के वामन बोआ में इकहरी पंक्ति ही होती है। मेक्सिको के इस पूर्वी अजगर के विवर में रहने की प्रवृत्ति का प्रमाण शरीर के आकार में भी मिलता है। इसका थूधन नोकीला होता है जिससे

बिल खोद सके। इसके शरीर की लम्बाई लगभग ढाई फुट होती है। हाथ में लेने पर गेंद-सा रूप बनाने की वृत्ति प्रदर्शित कर सकता है। शरीर का रंग चमकीला गहरा भूरा होता है। उस पर दूधिया रंग के धब्बे जहाँ-तहाँ होते हैं। सिर को गर्दन से पृथक स्पष्ट रूप का नहीं पाया जाता। उसे रुखानी-सा बना पाया जाता है जो बिल की खुदाई में प्रयुक्त हो सके।

पूर्वी अजगर उपवंश की बड़ी जातियाँ अंडा देकर संतानोत्पादन करती हैं किंतु बोआ या पश्चिमी अजगरों को अंडे के स्थान पर सदेह शिशु (पिंड) ही उत्पन्न करते पाया जाता है। अतएव उन्हें पिंडजन्मा अजगर कहना चाहिए। पूर्वी अजगरों की कई जातियों को अंडा देकर उन्हें अपनी गेंडुल या कुंडली में घेर कर सेते पाया जाता है। उस समय मादा अजगरों के शरीर का तापमान किसी अज्ञात कारण से ही अधिक हो जाता है और अंडों के फूटने के समय की कई सप्ताहों की अवधि तक बढ़ा हुआ तापमान ही रहता है। इस बात को प्रामाणिक रूप से कहा जा सकता है कि जंतुशाला के एक वातावरण के एक ही कठघरे में नर अजगर का जितना तापमान पाया जाता है, उसकी अपेक्षा अंडा सेने वाली मादा का तापमान बारह अंश फार्नहीट बढ़ा हुआ मिलता है। इतना अधिक बढ़ा हुआ तापमान तो भारी विस्मय की ही बात है।

अजगरों की पकड़-शक्ति कितनी दृढ़ होती है, इसके कुछ उल्लेखनीय उदाहरण मिल सकते हैं। एक बार पकड़ी हुई वस्तु को तो छोड़ने का नाम ही नहीं लेते। एडिलेड की जंतुशाला का एक विलक्षण उदाहरण है। अजगर ने एक खरगोश को उदरस्थ करते हुए अपना दाँत उस कम्बल में भी फँसा लिया जिस पर वह बैठा रहता था। वह सारा कम्बल उस बारह फुट लम्बे अजगर के पेट का

आन्तरिक भ्रमण करने के लिए विवश हुआ। यह कैसी उपहास्पद बात थी।

आकार की दृष्टि से पूर्वी अजगर और पश्चिमी अजगर (बोआ) की तुलना करने पर सबसे प्रथम स्थान पूर्वी भारत तथा मलाया क्षेत्र के रेखाजालाङ्कित अजगर (पाइथन रेटिकुलेट्स या रीगल पाइथन) को दिया जाना चाहिए जिसकी प्रामाणिक रूप में लम्बाई तैंतीस फुट पाई गई है। द्वितीय स्थान दक्षिणी अमेरिका के एनेकोंडा (यूनेक्टीज न्यूरिनस) को दिया जाना चाहिए जिसकी प्रामाणिक रूप में लम्बाई पच्चीस फुट पाई जाती है, परन्तु शरीर का भार पूर्वी अजगर की अपेक्षा अधिक होगा। तृतीय स्थान भारतीय अजगर (पाइथन मोल्यूरस) को दिया जाना उचित है जिसकी लम्बाई प्रामाणिक रूप में पच्चीस फुट पाई जा सकी है। चतुर्थ स्थान अफ्रीका के अजगर (पाइथन सीबी या अफ्रिकन राक पाइथन) का है जो बीस फुट लम्बाई तक बढ़ता समझा जाता है। किंतु ये लम्बाइयाँ अधिक से अधिक हैं जो किसी प्रकार प्रामाणिक उल्लेखों के आधार पर मानी जाती हैं अन्यथा प्रत्यक्ष रूप में प्रथम श्रेणी प्राप्त अजगर (रेखा-जालाङ्कित या पाइथन रेटिकुलेटस) की लम्बाई साधारणतः बाईस फुट ही पाई जा सकती है। भारतीय अजगर को लगभग अठारह फुट लम्बाई का ही पाया जाता है। एनेकोंडा तथा अफ्रिकीय अजगर में से प्रत्येक की लम्बाई साधारणतः सत्रह फुट ही मिल सकती है। इससे बड़े आकार तो अपवाद ही हो सकते हैं जिनको बड़े ही विस्मय के साथ जंतुशालाओं में गौरवपूर्ण स्थान दिया जा सकता है।

कुण्डलपाशीय बोआ पश्चिमी गोलार्द्ध का द्वितीय श्रेणी का लंबा अजगर होता है। प्रथम श्रेणी एनेकोंडा को दी जाती है। कुण्डल-पाशीय बोआ की कई उपजातियाँ पाई जाती हैं। इनमें मध्य अमे-

रिका वाले कुण्डलपाशीय का रंग प्रायः अधिक गहरा होता है। उसके धब्बे छोटे और अधिक अस्पष्ट होते हैं। गहरे रंग की एक आड़ी रेखा एक आँख से दूसरी आँख तक होती है तथा दूसरी पट्टी खड़े रूप में माथे पर होती है जो इस आड़ी पट्टी को काटकर + (धन) का निशान-सा बनाती है। कुण्डलपाशीय बोआ का प्रसार दक्षिणी मेक्सिको से लेकर उष्ण कटिबन्धीय अमेरिका तक पाया जाता है।

दक्षिणी अमेरिका के कुण्डलपाशीय बोआ को कुछ शान्त प्रकृति का पाया जाता है। उनमें से अधिकांश को पालतू बनाया जा सकता है। इनमें कुछ को उद्धत पाया जाता है परन्तु मध्य अमेरिका के कुण्डलपाशी बोआ को बड़े ही रौद्र रूप में सतत प्रहार करते ही नहीं पाया जाता, प्रत्युत वह फेफड़ों को फुला लेता है, मुँह को आंशिक रूप में खोल लेता है और बड़े वेगपूर्ण फुफकार छोड़ने लगता है। उसकी फुफकार इतनी शब्दपूर्ण होती है मानों किसी इंजिन के वाष्प-पीपे से वेग से वाष्प निकल रही हो। प्रहार के समय तो फुफकार का वेग अत्यन्त ही अधिक हो जाता है।

इस बोआ के शरीर पर बहुत से छोटे-बड़े परोपजीवी कीट भरे पड़े रहते हैं जिनमें कुछ का आकार तो हमारे नाखून बराबर होता है। अनुमान हो सकता है कि इन परोपजीवी कीटों के कारण उसका रौद्र स्वभाव हो, परन्तु कुछ पर्वतीय ऊँचे स्थानों में इन कीटों से मुक्त पाये जाने वाले कुण्डलपाशीय बोआ की वृत्ति में भी कुछ न्यूनता नहीं पाई जाती। वह भी उद्धत ही होता है।

शुद्ध बोआ या पश्चिमी अजगर विशेषतः वृक्षचारी होते हैं। मेडागास्कर की दो-एक जातियों को अपवाद मानकर उन्हें उष्ण कटिबन्धीय अमेरिका का जन्तु ही कहना चाहिए। साधारण बोआ

या कुण्डलपाशीय बोआ (कंस्ट्रिक्टर कंस्ट्रिक्टर) की लम्बाई १२ या १५ फुट तक होती है। उसका प्रसार दक्षिणी अमेरिका में ही है। इसके शरीर का रंग हल्का भूरा होता है जिस पर पीठ पर कलौंछ भूरी आड़ी पट्टियाँ होती हैं। पार्श्व भाग में ऐसी कलौंछ भूरी पट्टियाँ होती हैं जिनका केन्द्र भाग हल्के रंग का होता है। इन चित्रणों के कारण यह बोआ अपने निवासस्थान के जंगलों समान रङ्ग प्रदर्शित करता है जिनमें जहाँ-तहाँ धूप के छन-छन आने से झिलमिल प्रकाश का वातावरण पाया जाता है। इन प्रच्छन्न रूपों से छिपा पड़ा रह कर निकट आये हुए शिकार पर तीव्रता से झपट पड़ता है। कुत्ते या मृग तक उसके द्वारा इस प्रकार धोखे से प्रहार करने पर आक्रान्त हो जाते हैं। छोटे आकार के बोआ पक्षियों का ही शिकार कर सन्तुष्ट रहते हैं। पक्षियों के अंडे तथा छोटे स्तनपोषी भी उनके शिकार बन जाया करते हैं।

दीर्घ बोआ या एनेकोंडा ब्राजील तथा उसके निकट के क्षेत्रों में पाया जाता है। इसे जल-अजगर या वहाँ की स्थानीय भाषा में "सुकुरी" भी कहा जाता है। एक यात्री ने तो ४० फुट लम्बे एनेकोंडा का उल्लेख किया है जो कोई घोड़ा ही उदरस्थ कर गया था तथा उसको कहीं वृक्ष की शाखा से लटका मरा ही पाया गया था। वृक्ष की शाखा एक जल खंड के ऊपर लटकी थी। भारी बाढ़ आने पर वह एनेकोंडा बहता हुआ ही वहाँ वृक्ष पर आ अटका था। परन्तु इतनी लम्बाई का कोई भी एनेकोंडा या अन्य अजगर कहीं पर प्रत्यक्ष जीवित या मृत रूप में आज तक नहीं देखा जाता। इसलिए इस वर्णन को बहुत ही अतिरंजित ही माना जा सकता है। २५ फुट से अधिक लम्बाई का बोआ कदाचित् नहीं हो सकता। इस कारण पूर्वी अजगर को सबसे दीर्घाकार का श्रेय दिया जा सकता है।

अधिक से अधिक उन्नीस फुट लम्बा एनेकोंडा जन्तुशाला के लिए प्राप्त किया जा सका है जिसका भार तीन मन पाया गया। उसके शरीर की गोलाई (परिधि) तीन फुट थी। उसने ७२ बच्चे दिये जो तीन फुट दो इञ्च लम्बे थे। एक दूसरा एनेकोंडा १७ फुट लम्बाई का था। उसने एक बार में ३४ बच्चे दिए। प्रत्येक शिशु एनेकोंडा दो फुट तीन इञ्च लम्बा और एक इञ्च व्यास की मोटाई का था। एनेकोंडा को शरीर की लम्बाई के अनुपात में पूर्वी अजगरों से अपेक्षाकृत भारी पाया जाता है। सत्रह फुट लम्बे एनेकोंडा का भार उतना ही होगा जितना चौबीस फुट लम्बे रेखाजालाङ्कित अजगर का।

एनेकोंडा उभयजीवी सर्प होता है। वह स्थल पर भी पाया जाता है तथा जलजीवी भी होता है। शिकार की खोज में इसे प्रायः रुके हुए पानी के भागों में पानी में डूबा पड़े पाया जाता है। केवल नाक और आँख युक्त भाग ऊपर निकला रहता है। तट पर पानी पीने वाले जन्तु को आते देखते ही उस पर टूट पड़ता है और उदरस्थ कर लेता है। कभी-कभी शाखाओं पर अपने शरीर की कुण्डली लपेटे पड़ा रहता है। वहाँ से वह अपना मुख शिकार पर तीव्र वेग से पहुँचा देता है। कहीं-कहीं दक्षिणी अमेरिका की नदियाँ सूख जाती हैं। उस समय एनेकोंडा पङ्क के अन्दर धँस कर छिप जाता है और सूखे का मौसम वहीं काट लेता है। वर्षा प्रारम्भ होने पर वह पुनः बाहर निकलता है। एनेकोंडा की पृष्ठभूमि ऊपरी तल पर धूसरमय भूरी या जैतूनी होती है। उस पर बड़े गोल तथा गहरे भूरे या कलौंछ रङ्ग के धब्बों की एक या दो आड़े रूप में झुकी पंक्तियाँ होती हैं। साथ ही पार्श्व भागों में अधिक अव्यवस्थित रूप में छिटके, छोटे-

छोटे, नेत्र समान धब्बे पाये जाते हैं जिनका केन्द्रभाग उजला-सा तथा किनारी गहरे रङ्ग की होती है।

पीला एनेकोंडा (यूनेक्टीज नोटेइयस) छोटे आकार का होता है। उसका शरीर अधिक चित्रित पाया जाता है।

पश्चिमी द्वीपसमूहों में क्यूबा का बोआ (एपिक्रेटीज ऐंगुलिकर) बारह फुट लम्बा होता है। यह पुष्टकाय तथा शक्तिशाली जन्तु है। कृषि के प्रसार से इसका लोप होता जा रहा है। जंगलों में तो यह अब भी विद्यमान है किंतु इसकी वृत्ति ईख के खेतों में जाकर चूहे खाने की है। बस्ती के निकट पाकर साँप नाम से मनुष्य इसे शत्रु समझ कर मार डालता है। दुख की बात यह भी है कि क्यूबा में विषैले सर्प होते ही नहीं। यह बोआ ही सबसे बड़े आकार का सर्प है।

बहामा बोआ (एपिक्रेटीज स्ट्रिएटस) भी मूषकभक्षी बोआ है। इसकी लम्बाई छः फुट तक होती है। शरीर का रङ्ग धूसर और काले रङ्ग का चितकबरा होता है।

इन्द्रधनुष या मुद्रिकाङ्कित बोआ (एपिक्रेटीज सेंक्रिस) उत्तरी पेरू और ब्राजील से कोस्टारिका तक प्रसारित पाया जाता है। इसकी लम्बाई चार फुट होती है। शरीर का रङ्ग लाल भूरा होता है। अँगूठी समान गहरे रङ्ग के बड़े धब्बे की अनियमित पंक्तियाँ होती हैं।

श्वानमुख बोआ मुद्रिकाङ्कित बोआ से कुछ बड़ा होता है। यह भी ब्राजील के जङ्गलों में पाया जाता है। इसके बदन की पृष्ठभूमि हरे चमकीले रङ्ग की होती है और सिर विचित्र रूप में पट्टित होता है जिससे वह कुत्ते-सा मुँह रक्खे जान पड़ता है।

वृक्षचारी बोआ की आधी दर्जन जातियाँ पाई जाती हैं। केवल एक की लम्बाई छः फुट तक होती है। अन्यथा सब छोटे आकार

के ही होते हैं। शरीर दुबला और खड़े रूप में दबा होता है। दुम लम्बी और ग्रहणशील होती है। सिर बड़ा और पिंड-सा भारी

चित्र २—श्वानमुख बोआ

होता है। पतली गर्दन होने से वह और भी बड़ा प्रतीत होता है। आँखें बड़ी होती हैं। पुतलियाँ खड़ी होती हैं। इन सब रूपों में देखने पर यह विषधर ही जान पड़ता है। ये अपनी लम्बाई के आधे बड़े जन्तु पर अपनी कुडंली आबद्ध करने का प्रयत्न करते हैं। विष-दन्त तो नहीं होते लेकिन ऊपरी और निचले दोनों ही जबड़ों के अगले दाँत बहुत लम्बे होते हैं। उसकी विशेष उपयोगिता भी होती है। इन दाँतों से ये एक-तिहाई इंच गहरा घाव कर सकते हैं।

इनका आहार विशेषतया पक्षी होते हैं। अतएव उन्हें शीघ्र पकड़ सकने के लिए परों के नीचे तक शरीर में दाँत धँस सकना ही शिकार पकड़ने में इन्हें सफलता प्रदान कर सकता है।

बोआ एनिड्रिस वृक्षचारी बोआ होता है जो दक्षिणी अमेरिका के उत्तरी भाग में पाया जाता है। इसकी एक उपजाति के शरीर का रंग सर्वाङ्ग सुनहला भूरा होता है, परन्तु साधारण जाति में गहरे रंग के चित्रण तथा धब्बे होते हैं। इनका वृक्ष की शाखाओं से लटकने का विचित्र ढंग होता है। ये अपने शरीर को डालों में प्रायः लपेटते नहीं, बल्कि एक संकुचित गोल कुण्डली रूप में शरीर बनाकर उसे डाल के ऊपर दोनों ओर लटक जाने देते हैं। इस तरह दो इंच व्यास की मोटी डाल पर भी ये विश्राम कर लेते हैं। डाल के नीचे व्यवस्थित रूप से दोनों ओर लटका कर संयुक्त-सा कर एक लटकते हुए गेंद का रूप ही बना लेते हैं। ऐसे रूप में डालों तथा पत्तों के बीच में पड़े रहने पर इनको देख सकना कठिन ही होता है।

हरित वृक्षचारी बोआ (बोआ कैनिना) का प्रसार पश्चिमी गोलार्द्ध में ब्राजील और गाइना में पाया जाता है। यह बड़ा सुन्दर अजगर होता है। इसकी लम्बाई चार फुट होती है। शरीर पुष्ट होता है। सिर और भी भारी होता है। शरीर का रंग ऊपरी तल पर भव्य हरा होता है। निम्न तल पर मटमैला पीला होता है। परन्तु इतना ही होता तो वर्तुलाकार या गेंदाकार कुण्डली बनाकर कहीं पेड़ पर रहने पर इसे नीचे से सहज ही देखा जा सकता। इसी कारण रूप छिपाने के लिए कुछ विशेष व्यवस्था-सी होती है जिसमें शरीर का ऊपरी तल अखंड रूप में हरा नहीं होता। इसके लिए ऊपरी तल पर चौड़ी तथा दूर-दूर स्थित श्वेत रंग की पट्टियाँ होती हैं। पीठ की रीढ़ पर भी इस श्वेत रंग का प्रसार होता है।

मेडागास्कर बोग्रा (बोग्रा मेडागास्करिएंसिस) का प्रसार मेडा-गास्कर में ही पाया जाता है। यह अमेरिकीय बोग्रा की प्रजाति का ही बोग्रा है। सात फुट तक लम्बाई होती है। इसके शरीर का रंग भूरा-सा होता है। गहरे रंग के बड़े धब्बों की दोहरी पंक्तियाँ होती हैं।

एक प्रकार के बोग्रा बालुका बोग्रा या मटिहा सर्प कहे जाते हैं। इनमें कुछ की बिल में रहने की अत्यधिक वृत्ति होती है तथा कुछ में बहुत कम या बिल्कुल नहीं होती। इनकी जातियाँ पूर्वी तथा पश्चिमी दोनों ही गोलार्द्धों में पाई जाती हैं। भारत के मटिहा और दोमुँहा बोग्रा इस तरह के ही सर्प हैं।

अमेरिका के पश्चिमी तट पर रबर या दोमुँहा बोग्रा (चेरिना बोटी) वामन रूप का ही होता है। सिर तो कुन्द या अधकटा-सा ज्ञात होता है, पूँछ भी अधकटी ज्ञात होती है। इसी कारण इसे दोमुँहा नाम दिया जाता है। शरीर का रंग धूसर होने से इसे रूपहला बोग्रा भी कहा जाता है। शरीर पर कोई चित्रण नहीं होता। डरने पर गोल मटोल गेंद-सा बन जाने का स्वभाव रखता है। यह अधिकांश बिल के अंदर ही रहता है।

कैलिफोर्निया बोग्रा (लिचान्यूरा रोजिग्रोफुस्का) दो फुट लम्बा होता है। इसका रंग पीला-सा होता है, धूसर भी हो सकता है। उस पर गहरे भूरे या लाल भूरे रंग की पट्टियाँ लम्बाई में बनी होती हैं। निचले तल पर हल्का गुलाबीपन होता है। यह बिल में नहीं रहता।

मटिहा या बालुका अजगर की भारतीय तथा अफ्रिकीय जातियाँ भी होती हैं। भारतीय मटिहा या खरशल्कीय बालुका अजगर (गोंगिलोफिस कोनिकस) एक गज लम्बा होता है। उसका शरीर

अत्यधिक स्थूल होता है। सिर छोटा-सा होता है और पूँछ अकस्मात पतली बनती जाने वाली होती है।

भारतीय दुमुँहा सर्प या वभ्रु बालुका अजगर (एरिक्स जोनिआई) ढाई फुट लम्बा होता है। मिट्टी में शीघ्र घुस जाने के लिए उसका मुँह कील-सा होता है। इसके शरीर का रंग सपाट भूरा-सा होता है। आँखें बहुत ही छोटी होती हैं। शरीर का गोल आकार होता है। शल्क सूक्ष्म तथा चमकीले होते हैं। पूँछ इतनी अधिक अधकटी-सी होती है कि ठूँठ-सी जान पड़ती है। इसी कारण इसे दोमुँहा साँप नाम दिया जाता है। यह साँप भी सिमट कर गेंद-सा रूप बना लेता है। उसी के अन्दर मुँह भी छिपा लेता है। पूँछ बाहर ही निकली रहती है। अमेरिकीय दोमुँहा से यह बिल्कुल भिन्न बोआ ही होता है।

चित्रित बालुका अजगर (एरिक्स जेकुलस) का प्रसार दक्षिणी योरप, उत्तरी पूर्वी अफ्रीका तथा पश्चिमी एशिया में पाया जाता है। इसका रंग चितकबरा होता है तथा आकार छोटा होता है। इसी तरह की अन्य जातियाँ भी होती हैं। उनमें एक को मिस्री बालुका अजगर (एरिक्स थिबैकस) कह सकते हैं। इसका प्रसार दक्षिणी मिस्र से लेकर टांगानीका तक पाया जाता है।

निर्विष सर्प

ठोस दाँतों के सर्पों में असुषिरदंती जलसर्प होते हैं। इनका आकार हाथी के सूँड़ समान होता है। इसलिए इन्हें शुण्डाकृति जल-सर्प भी कहते हैं। इनका आहार पूर्णतः मछलियाँ होती है। कोलुबाइनी नामक उपवंश में घास का साँप होता है जिसकी लक पर पीले या नारंगी रंग का धब्बा होता है। यह भी कुछ जल-प्रेमी-सा ही होता है। इसका आहार मछलियाँ और अंडे हैं। यह इंगलैंड का प्रसिद्ध निर्विष सर्प है। जल के निकट ही प्रायः यह पाया जाता है। पकड़े जाने पर यह फुफकार-सी मारता है किन्तु कदाचित ही कभी काटता हो। इसके अंडे चालीस तक पाये जाते हैं जो एक दूसरे से चिपके रह कर एक गुच्छ-सा बने होते हैं। वे सूखी पत्तियों के ढूहे या घूरे में रक्खे होते हैं। इस साँप की लम्बाई इंगलैंड में तीन फुट तक होती है किन्तु दक्षिणी योरप में इसकी लम्बाई पाँच फुट तक होती है।

उत्तरी और मध्य अमेरिका में गार्टर सर्प पाया जाता है। उसके शरीर पर सुन्दर पट्टियाँ और धब्बे होते हैं। इस जातियों के सर्प सदेहजन्मा या पिंडज होते हैं। एक सर्प से सत्तर शिशु तक एक बार में उत्पन्न होते हैं।

दक्षिण अफ्रीका का छछूँदर सर्प भूरे या काले रंग का होता है। इसकी लम्बाई छः फुट तक होती है। इसे तो गार्टर सर्पों से भी अधिक शिशु उत्पन्न करते देखा जाता है। इसे अस्सी सदेह शिशु उत्पन्न करते पाया जाता है।

जैमेनिस प्रजाति के निर्विष सर्प योरप, एशिया उत्तरी अफ्रीका, उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका में पाये जाते हैं। अमेरिका में इन सर्पों को कोड़ा सर्प (हिपस्नेक) कहते हैं। इनका सिर लम्बोतरा होता है और आँखें बड़ी होती हैं।

भारत का धामिन सर्प (जमेनिस म्यूकोनस) बाह्य आकार में तो फनियर समान ज्ञात होता है, परन्तु यह निर्विष सर्पों में सब से बड़े आकार का होता है। इसकी लम्बाई नव फुट तक होती हैं।

मध्य और दक्षिणी योरप में गहरा सर्प होता है। यह कृशकाय सर्प छः फुट तक लम्बा होता है। इसका आहार छोटे स्तनपोषी, पक्षी, सरट, मेढक या कभी-कभी अन्य छोटे सर्प होते हैं। कोल्यूबर प्रजाति के सर्पों की कई जातियाँ होती हैं जिनमें सिर गर्दन से स्पष्ट पहचाना जाता है। शरीर तथा पूँछ लम्बोतरा होता है। आँखें मझोले आकार की होती हैं। मध्य योरप में चतुः रेखी सर्प इस प्रजाति का होता है जिसकी लम्बाई आठ फुट तक होती है। एक दूसरी जाति का सर्प पीलेपन या जैतूनी रंग का होता है जिसमें सफेद से धब्बे होते हैं। इसका प्रसार उत्तर में डेनमार्क तक है।

पट्टित सर्प भी इसी प्रजाति का है। यह दक्षिणी-पूर्वी एशिया में सर्वत्र पाया जाता है। इसका रंग खाकी मिला भूरा होता है। इसके शरीर के दोनों बगल गहरे रंग की पट्टी होती है। मलाया के कुछ भागों में चूने की एक मील लम्बी गुफा में इस जाति के सर्प पूर्ण अंधकार में रहते हैं। इस कारण इनका रंग हल्का पीला होता है। इन गुफावासी निर्विष सर्पों का आहार चमगीदड़ होते हैं परन्तु सर्पशाला में इन्हें चूहे-चूहियाँ खिलाकर रक्खा जा सका है।

अमेरिका में इस प्रजाति की ही एक जाति वृषभ सर्प (बुल

स्नेक) कहलाती है। ये सर्प उत्तेजित होने पर बैल की तरह रंभाने का शब्द करते हैं।

कोरोनेल्ला प्रजाति को कोल्यूबर सर्पों से कुछ भिन्न पाया जाता है। एक जाति चिकना सर्प (स्मूथ स्नेक) नामक होती है जो अधिकांश योरप में पाई जाती है। इसकी लम्बाई दो फुट तक होती है। इसका रूप देखने में मंडली समान होता है, परन्तु मण्डली की अपेक्षा इसका शरीर पतला होता है तथा शरीर पर गहरे रंग की वक्र पट्टी नहीं होती। इसकी आँख की पुतली गोल होती है। परन्तु मण्डली में आँख की पुतली खड़े छिद्र समान होती है।

उत्तरी अमेरिका में एक राज सर्प (किंग स्नेक) होता है जिसका रङ्ग काला और श्वेत या काला और पीला होता है। इसकी लंबाई छः फुट होती है। यह दूसरे सर्पों पर आक्रमण करता है। मोकासिन, कापरहेड और झनझनिया सरीखे विषधर सर्पों तक को पराजित कर देता है। यह सर्प उत्तरी अमेरिका के विषधर सर्पों के विष से अप्रभावित रहता है किन्तु प्रयोगों द्वारा यह देखा गया है कि यही राज सर्प फनियर (फणी या कोबरा) या पूर्वी गोलार्द्ध के अन्य विषैले सर्पों के विष से मृत हो जाता है।

शूकरनासा (हाग नोज्ड) सर्प उत्तरी अमेरिका में पाया जाता है। इसका बदन ठिगना होता है। इसकी नाक सूअर समान ऊपर उठी होती है। यह कभी काटता नहीं; किन्तु बाधा पहुँचाने पर काटने का स्वाँग अवश्य करता है। भयभीत किये जाने पर यह अपनी गर्दन फुला कर फण समान बना लेता है किन्तु जब इस क्रिया से भी यह शत्रु को त्रस्त् नहीं कर पाता तो मूर्च्छा का स्वाँग कर भूमि पर मृत-सा लेट जाता है। यथेष्ट समय तक यह इस दशा में पड़ा रह सकता है। संकट दूर होने पर यह उठ भागता है।

अल्प विषधर सर्प

सांपों की दन्तावली के आकार-प्रकार तथा निर्विषता और विषधरता की दृष्टि से विचार करने पर हमें उनके कुछ भेद केवल वर्णन की दृष्टि से मान लेने में कोई आपत्ति नहीं हो सकती। पहला प्रकार तो हम उन सर्पों का ही मान सकते हैं जो सर्वथा निर्विष होते हैं। उनके दाँतों को इसी कारण प्रकृति द्वारा ठोस बनाया पाया जाता है। अतएव वे ठोसदंती या असुषिरदंती कहला सकते हैं।

निर्विषों को छोड़ कर आगे बढ़ने पर हमें दूसरा प्रकार ऐसा मिलता है जो थोड़ा-सा ही विष रख सकता है। विष का भण्डार या उपयोग थोड़ा ही होने से इनकी दंतावली का आगे का भाग साधारणतया ठोस ही पाया जाता है, परन्तु जबड़े के पिछले भाग में विष की थैली से विष बह जाने के लिए कुछ गहराई की-सी जगह या खुली नाली (सीता—हल द्वारा मिट्टी में बना चिन्ह) दाँतों में हो सकती है। इनको ही पश्च विषदन्ती कहा जा सकता है। ऐसे ही सर्पों के लिए हमने "ऊपर अल्प विषधर सर्प" शीर्षक दिया है। हमारे इस अध्याय का प्रयोजन तो इतना ही कहने से चल जाता है परन्तु साँप के निर्विष दाँतों तथा विषदन्तों की चर्चा होने पर यहाँ तीसरे-चौथे प्रकार की भी चर्चा कर देना उचित है।

तीसरा प्रकार उन साँपों का होना चाहिये जो घोर या घातक विषधर होते हैं। इनको विष का प्रयोग आये क्षण ही और प्रचुर

मात्रा में करने की आवश्यकता हो सकती है। इसलिए प्रकृति द्वारा पहला विधान तो यह होता है कि विष का भंडार अधिक हो, दूसरे विष को आक्रान्त जन्तु के शरीर में बिना विलम्ब ही प्रविष्ट करा सकने के लिए विषदन्त जबड़े के सामने के भाग में ही हों। इस कारण इन्हें अग्र विषदन्ती या घोर विषधर कहना उचित होगा। यह आवश्यकता की ही बात है कि जब विषदन्तों का प्रमुख उपयोग है, विष का भंडार भी प्रचुर है तो विष-थैली से दाँत द्वारा आक्रान्त जन्तु में विष पहुँचाने के लिए विषदन्तों की नाली अधिक गहरी हो। होता भी यही है। नाली को गहरी सीता समान पाया जाता है। परन्तु उस नाली या सीता के किनारे इतने अधिक निकट हो गए हैं कि उसका रूप किसी बन्द नाली समान ही हो।

चौथा प्रकार इतने बड़े विषदन्तोंयुक्त सर्पों का हो सकता है जिनको अपने दाँत मुख बन्द करते ही मुख के अन्दर मोड़ या तालु से दबा कर रखना पड़े। इनको दीर्घ विषदन्त या काल सर्प कहना उचित है।

विष की न्यून या अधिक मार कर सकने की आवश्यकता के ही अनुसार हमें साँपों में खोखले या हल्की खुली नालियों या घिरी नालियों के दाँत दिखाई पड़ते हैं या विषदन्त जबड़े के अगले या पिछले भाग में होते हैं। इस तथ्य को समझ कर ही हम वैज्ञानिकों का कार्य कुछ हृदयंगम कर सकने में समर्थ हो सकते हैं। तनिक भी विचार करने पर हमें यह ज्ञात हो सकता है जिस किसी भी सर्प में विष वाले दाँत पिछले जबड़े की ओर होंगे वह साधारणतः मनुष्य के लिए घातक नहीं होगा। अतएव यदि पश्च विषदन्ती सभी साँपों को साधारण सर्प या निर्विष सर्पों की कोटि में रक्खा जाय तो हमें विस्मय नहीं करना चाहिए। हम यहाँ पर कुछ वैज्ञानिक तथ्यों या

विभाजनों की ही बात कर रहे हैं अन्यथा किसी दुर्भाग्यवश पश्च-विषदन्ती सर्प के विषदन्त से ही किसी व्यक्ति की मृत्यु होती पाई जा सकती है। उस दुर्घटना से हमारी सर्पों की दन्तावली, श्रेणी-विभाग, वंश-परिचय आदि की वैज्ञानिक व्यवस्था निर्मूल नहीं हो सकती। हाँ, जबड़े के पिछले भाग में स्थित विषदंतों के सर्पों द्वारा नित्य ही मनुष्य की मृत्यु की घटना घटित होने लगे तो निर्विष और विषधर सर्पों की परिभाषा हमें अवश्य बदलनी पड़े।

आज जितने भी पश्च विषदन्ती सर्प हैं, उन सबको अल्प विषधर ही पाया जाता है, परन्तु आज से पूर्व समयों में क्या ऐसी ही व्यवस्था थी, इसको कह सकना आज कठिन है। प्रस्तरावशेषों द्वारा हमें विशालकाय विलुप्त सर्पों का ऐसा रूप प्राप्त होता है जो पश्चदन्ती थे। पश्च विषदन्ती साँपों में शरीर के आकार की तुलना में पश्च विषदंत बहुत ही छोटे होते हैं। आज के किसी छः फुट लम्बे पश्च विषदन्ती साँप में विषदंत जितना लम्बा होता है उसके विषदंतों से नौ गुना बड़ा पश्च विषदंत ऐसे प्रस्तरावशेष में प्राप्त हुआ है जो प्लीस्टोसीनी काल (नवजंतुक युग का अंतिम काल आज से लगभग दस लाख वर्षों पूर्व) का है। पश्च विषदन्तों से शरीर के आकार की तुलना करने पर इतने बड़े पश्च विषदन्त वाले साँप की लम्बाई लगभग साठ फुट निर्धारित की जाती है। इतनी लंबाई तो आज के सबसे बड़े अजगर की लम्बाई से भी दूनी है। यह प्रस्तरावशेष दक्षिणी अमेरिका के दक्षिणी भाग में ग्रैन चैको नामक स्थान में प्राप्त हो सका है। इस प्रस्तरावशेष का समय ऐसा ज्ञात होता है जब पृथ्वी पर मनुष्य का उदय प्रारम्भ हो रहा था तथा सरीसृपों के महान युग तथा महान रूपों को लुप्त हुए बहुत अधिक दिन हो चुके थे।

पश्च विषदन्ती साँपों का अल्प विष-भंडार केवल उन जन्तुओं को मूर्च्छित-सा करने में होता है जो उनके मुख में पहुँच चुके हैं और अगले दाँतें द्वारा उनका शरीर विद्ध है। इन अल्प विषधारियों में कुछ में एक जोड़े ही पश्च विषदन्त होते हैं, परन्तु कुछ में अधिक संख्या के पश्च विषदंत होते हैं।

पश्च विषदंती सर्पों में हमें विविध आकार-प्रकार मिलते हैं। आस्ट्रेलिया के शिशुधान जन्तुओं में कंगारू ही नहीं होता, बल्कि उस श्रेणी के ही जन्तुओं में वहाँ या अन्य भूभागों में शिशुधान भालू, भेड़िए, विडाल, छछुन्दर, मूषक आदि की तरह के जन्तु भी मिलते हैं। इसी तरह साँपों की भी दशा है। पूर्णतः निर्विष या ठोस दाँतों के सर्पों में मोटे, पतले, लम्बोतरे, छोटे-बड़े, वृक्षचारी, जलचारी आदि कितने ही विचित्र रूप मिलते हैं। उस तरह के ही विचित्र रूप इन अल्प विषधरों या पश्च विषदन्ती साँपों में दुहराए से मिल सकते हैं। उनमें कुछ का परिचय नीचे दिया जा रहा है इस सर्पों को अधिकांशतः साधारण सर्पवंश के एक उपवंश में ही रक्खा जाता है जिसे पश्च विषदन्ती उपवंश नाम दिया गया है परन्तु दो अन्य उपवंश भी होते हैं जिनमें एक तो सरिता-सर्प होते हैं जिनको अल्प विषदंती सरिता सर्प कहा जाता है तथा दूसरा उपवंश पश्च विषदन्ती अंडछेदकों का होता है।

पश्च विषदंती सर्पों में एक उड़ाकू सर्प एक गज लम्बा पाया जाता है। जिस तरह नाग (कोबरा) अपने मुख के भाग की चमड़ी समान शल्कीय आवरण को फैला कर मुख का अत्यन्त पिचका किंतु विशेष चौड़ा रूप बना कर फण प्रदर्शित करता है, उसी तरह हम उड़ाकू साँप में सारे शरीर के शल्कीय आवरण को नाग के फण की तरह चपटा तथा फैला रूप बनाने की शक्ति पाते हैं। ऐसा रूप

छतरी का-सा काम देता है और यह साँप एक वृक्ष की शाखा से दूसरी शाखा या वृक्ष पर अथवा भूमि पर उड़न-कुदान भरने में समर्थ होता है। इसका प्रसार दक्षिणी भारत, बर्मा, दक्षिणी चीन, मलाया प्रायद्वीप, सुमात्रा, बोर्नियो आदि में पाया जाता है। इसकी कई जातियाँ होती हैं। एक जाति चित्रित उड़ाकू सर्प (क्रिसोपेलिया ओरनाटा) होती है जो उपयुक्त क्षेत्रों के अतिरिक्त सिंहल में भी पाई जाती है। इस उड़ाकू साँप के विविध रूप के रंग हो सकते हैं। कोई तो चमकीला हरा होता है, कोई जैतूनी होता है, कुछ को काला ही पाया जाता है किन्तु इन सब में प्रचुर मात्रा में पीले या लाल रंग के धब्बे या चित्रण होते हैं। हल्के रंग के साँपों का सिर काला होता है। लाल या पीले रंग को चमकीले धब्बों या आड़ी पट्टियों रूप में प्रदर्शित पाया जाता है।

पतली लता या कोड़े समान लम्बोतरे आकार के पश्च विषदंत साँप अमेरिका में मेक्सिको से दक्षिणी अमेरिका तक प्रसारित पाये जाते हैं। ये वृक्षचारी होते हैं। इनको लता सर्प नाम दिया जा सकता है। हरित लता सर्प (ओक्सिबेलिस फुल्गिडस) मध्य अमेरिका में पाया जाता है। इसकी लम्बाई चार फुट होती है किन्तु इसका अधिक से अधिक मोटा भाग केवल आधा इंच व्यास का ही हो सकता है। उसमें भी रस्सी समान लम्बी पतली पूँछ बनी होती है। इसका सिर लम्बा तथा पतला होता है। इसका सिर नोकीला सा होता है। इसका रंग बिल्कुल पत्ती समान हल्का हरा होता है। उसमें दोनों पार्श्वों पर मटमैली पीली (नींबू के छिल्के समान) पतली पट्टी होती है। वायुकंपित कृशकाय टहनियों को जिस प्रकार एक दिशा से दूसरी दिशा में हिलते पाया जाता है, उसी तरह यह लता सर्प भी भयग्रस्त होने पर अपना लम्बोतरा सिर सीधा कर

कम्पित करने लग जाता है। यह पतली टहनियों के अनुरूप गति उसे छिपा सकने में समर्थ होती है। इनका आहार सरट होते हैं। उनको अपने पश्च विषदन्तों से तत्क्षण मूच्छित कर उदरस्थ कर लेता है। अमेरिका के लता सर्पों की चार जातियाँ पाई जाती हैं। ये मनुष्य के लिए निरापद ही होती हैं।

एशियाई लता सर्प का प्रसार भारत, सिंहल, बर्मा और थाईलैंड में पाया जाता है। इनको पाँच फुट तक लम्बा पाया जाता है। किन्तु ये भी अत्यन्त पतले लम्बोतरे शरीर के होते हैं। एक सर्प लम्बमुख लतासर्प (ड्रयोफिस माइक्टरिजेंस) का मुख तो इतना पतला बना होता है मानो पेंसिल की नोक ही हो। इसका रंग पत्तों-सा हरा होता है। इसके शल्कों के मध्य की त्वचा काली होती है। उसका परिणाम यह होता है कि उत्तेजित अवस्था में बाह्य आवरण के तन जाने से हरे शल्क ऐसे जगमगाने लगते हैं मानों किसी आभूषण में हीरे जड़े हों। शत्रु को डराने की एक विचित्र युक्ति इसमें देखी जाती है। क्रोधित होने पर यह अपना सिर तानता है और मुख को चौड़ा खोल लेता है जिससे शल्कों के मध्य की त्वचा के काले दाने गले के भीतर हो जाते हैं। इस कारण इसका मुख पूर्णतः स्याही से भरा ज्ञात होने लगता है। जो अनजान हैं उनको तो यह साँप बड़ा ही विषधर ज्ञात हो सकता है।

दक्षिणी अफ्रीका का बूम्स्लैंग (डिसफोलिडस टाइपस) सर्प पश्च विषदन्ती है किन्तु यह भयावह होता है। एक जन्तुशाला में कई मुर्गियों को इसके द्वारा कटाने का परीक्षण किया गया। वे सब कुछ मिनटों के अन्दर ही मर गईं। एक बार एक सहायक कर्मचारी की बाँह में एक बूम्स्लैंग ने काट लिया। चौबीस घन्टे के अन्दर ही वह बेसुध हो गया। बड़ी ही कठिनाई से उसकी प्राण-रक्षा कर

सकना संभव हुआ। इसके विष का प्रभाव भी कुछ विचित्र देखा गया। जिस बाँह में इसने नहीं काटा था, उसमें तथा मुख, जाँघ में भी शोथ दिखाई पड़ा। मुख की झिल्ली से रक्तस्राव भी होने लगा, सूजन तथा कालापन भी पाया गया। सर्प-विष का प्रभाव तो स्नायुओं पर ही पाया जाता है जिससे मूर्च्छा आकर मृत्यु होती है, परंतु इसके विष का प्रभाव रक्त पर पाया गया।

मुस्सूरना या कुंडलपाशीय पश्चदन्ती (स्यूडोबोआ क्लीलिया) उष्ण कटिबंधीय सर्प है। इस प्रकार की एक दर्जन जातियाँ पाई जाती हैं जो पश्च विषदन्तों का ही शिकार पकड़ने में प्रयोग नहीं करतीं, बल्कि अपनी गेंडुली या कुंडल के दबोच से भी उन्हें अधिकृत करती हैं। इस साँप का रंग चमकीला, नीला, काला होता है। इसकी लम्बाई आठ फुट तक पहुँचती है। इसका प्रसार अमेरिका में ग्वाटेमाला से लेकर ब्राजील तक पाया जाता है। यह एक दीर्घ विषदन्ती भयंकर विषधर मंडली सर्प की जातियों का भयानक शत्रु होता है। उस काल सर्प को यह निडर होकर दबोच लेता है। दबाकर उसका गला घोंट देता है। काल सर्प इसे कठोर आघात भी पहुँचाता है। विषदंश भी करता है, परन्तु मुस्सूरना पर इन सबका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। घातक विषदंश के प्रभाव से तो वह सदा अप्रभावित ही रहता है। परन्तु पता नहीं, किस प्रकार उसके इस घातक सर्प द्वारा काटे घाव भी शीघ्र भर जाते हैं। इन दशाओं में मुस्सूरना के सम्मुख पड़ने पर इस काल सर्प की किसी प्रकार रक्षा नहीं। एक पश्च विषदंती सर्प अग्र विषदन्ती को पराभूत कर उदरस्थ कर लेता है, यह जन्तु-जगत की एक अद्भुत घटना ही है। एक चार फुट के काल सर्प को उससे एक डेढ़ फुट अधिक लम्बे मुस्सूरना सर्प के सम्मुख छोड़ कर इनके द्वन्द्व युद्ध का निरी-

क्षण कर वैज्ञानिकों ने इस तथ्य का भली-भाँति पुष्टीकरण किया। मुस्सूरना ने अपने पश्च विषदन्त से उसे काटने का भी उद्योग किया किन्तु उस विषदंश का शीघ्र प्रभाव कुछ न दिखाई पड़ा। कदाचित सर्पों में अन्य विषधर सर्पों से कुछ रक्षित रह सकने की शक्ति होती है।

मुस्सूरना सर्प जहाँ पाया जाता है, वहाँ के कुछ दीर्घ विषदंती मंडली सर्प के लिए यह काल होता है। परन्तु मनुष्य के लिए निरापद ही होता है। अतएव इस सर्प की रक्षा अत्यन्त आवश्यक ही है। नेवला जिस प्रकार सर्पों का नाश करने के लिए प्रसिद्ध है, वैसे ही इस सर्प को समझना चाहिए। सबसे अच्छा तो यह है कि इसका नाम ही नकुल सर्प रख दिया जाय जिससे साधारण व्यक्ति भी इसके इस उपयोगी गुण से परिचित हों। होंडूराज के निवासी इस काल सर्प भक्षक पश्चदन्ती सर्प के गुण को जानते हैं। उन्हें यह ज्ञात है कि यह स्वयं तो मनुष्य के लिए निरापद ही होता है परन्तु अन्य भयानक घातक विषधरों का संहार करता है। अतएव एक मुस्सूरना की रक्षा करने का अर्थ अन्य कई भयानक विषधरों का नाश कराना है। इसी कारण वे मुस्सूरना को कभी नहीं मारते। इस कारण सर्पशालाओं के अधिकारियों को नमूने के लिए भी मुस्सूरना पालने में कठिनाई होती है। जहाँ दर्जनों भयंकर विषधरों के नमूने पकड़े जाते हैं, वहाँ कहीं एक दो मुस्सूरना ही कठिनाई से सर्पशालाओं तक पहुँचाया जा सकता है। इसकी उपयोगिता का मूल वासियों को अनुभव होने से ही इसे पकड़ने में अनिच्छा होना एक स्वाभाविक बात हो सकती है। यह सर्प कुछ लुप्तप्राय भी हो रहा है। इसे साधारणतः निरापद अवश्य कहा जा सकता है। परन्तु पालतू बनाये जाने पर अल्प विषधरों को भी कभी-कभी विषदंश

करने की प्रवृत्ति उत्पन्न करते पाया जाता है। फिर इसका आकार तो छः फुट लम्बा होता है। पिछले विषदन्त भी रहते ही हैं और विष की थैली सुलभ हो होती है। इसलिए जंतुशालाओं या सर्प शालाओं में कर्मचारियों को इससे या अन्य बड़े पश्चदंतियों से साव-धान रहना पड़ता है।

क्षुप सर्प (बायगा डेंड्रोफिलस) का प्रसार मलाया से लेकर फिलीपाइन तक पाया जाता है। इस तरह के साँपों की लगभग बीस जातियाँ होती हैं जिनका प्रसार उष्ण कटिबन्धीय अमेरिका, दक्षिणी एशिया, न्यूगिनी तथा उत्तरी आस्ट्रेलिया में है। ये पश्च विषदन्ती सर्प हैं। ये मन्दगामी होते हैं। प्रायः बहुत पतला, दबा हुआ शरीर होता है। शल्क चिकने होते हैं। आँख की पुतली अण्डाकार होती है।

मलाया के क्षुप सर्प का शरीर चमकीला काला होता है तथा विशेष दूरियों पर नियमित रूप की सुनहली मुद्रिकाएँ (आड़ी पट्टियाँ) होती हैं। यह वृक्षचारी होता है। किसी टहनी पर कुंडलित रहने पर यह एक जन्तु के स्थान पर कोई बड़ी सुन्दर वस्तु ही जान पड़ता है। अत्यन्त चमकीले तथा चटक काले शल्कों के मध्य मुद्रिकाओं या आड़ी पट्टियों की विद्यमानता यह आभासित करती है कि उनका शरीर सद्यःरंजित ही है। इसका शरीर छः फुट तक लम्बा होता है। पश्च विषदन्त मझोले आकार के होते हैं। वे पक्षियों को पकड़ सकने के बहुत उपयुक्त होते हैं। यह मनुष्य के लिए सर्वथा निरापद सर्प है।

घातक विषधर सर्प

साँपों के वर्णन में यथार्थ महत्व तो उन साँपों का ही है जिनके विषदंश से मनुष्य कालकवलित हो जाता है। ये काल रूप सर्प मनुष्य के निकट आतंक का कारण सदा से ही रहते आये होंगे। आतंक का कारण भी मनुष्य प्रत्यक्ष देखता रहा होगा। एक बार भीषण या घातक विषधर सर्प के काट लेने पर वह प्राणरक्षा की कोई युक्ति ही नहीं पा सकता था। प्राणरक्षा हो जाने के जो विरले उदाहरण मिल जाते होंगे वे ऐसे ही रूप के होंगे जिनमें या तो किसी अल्प विषधर ने विषदंश किया होगा या घातक विषधर का विष भण्डार ही काटने की अनेक पूर्व घटनाओं के कारण समाप्तप्राय होगा। उसकी क्षतिपूर्ति उस समय तक न हो सकी होगी। अथवा किसी अन्य कारण से घातक मात्रा का विष काटने पर शरीर में प्रवेश न कर सका होगा।

संसार के बहुत से भूभागों में भिन्न-भिन्न प्रकारों के घातक विषधर पाये जाते हैं परन्तु सर्प विषदंश से भीषण मृत्यु-संख्या प्रदर्शित करने वाले दुर्भाग्यशाली देश भारत और ब्राजील हैं। पुराने आँकड़ों से वैज्ञानिकों ने यह प्रकट किया था कि ब्राजील में प्रति वर्ष लगभग १९२०० सर्प-विषदंश की घटनाएँ होती थीं जिनमें ४८०० मृत्यु संख्या होती थी। यह आँकड़ा उस समय का है जब सर्प बिषहारी प्ररस (सिरम) के प्रयोग का ज्ञान प्राप्त नहीं किया जा सका था। १९१९ के बाद इस मृत्यु-संख्या में दो चार सौ प्रति वर्ष अवश्य ही

कमी होती गई होगी। सर्प विषहारी प्रस बनाने के लिए पहले थोड़ी हल्की मात्रा का सर्प-विष घोड़े के रक्त में प्रवेश किया जाता है। वह विरोधी रस अपने रूप में उत्पन्न करता है। उसे ही प्रस या सिरम कहते हैं। धीरे-धीरे अधिक मात्रा का सर्प-विष उसके रक्त में प्रविष्ट किया जाता है। वह अन्त में मनुष्य की घातक मात्रा तक के सर्प-विष का संहारक प्रभाव अपने रक्त में उत्पन्न कर लेता है। उसका रक्त छान कर केवल उपयुक्त द्रव या प्रस सुरक्षित कर लिया जाता है। उसका प्रयोग साँप के काटे मनुष्य पर करने से प्राण-रक्षा की आशा हो सकती है। परन्तु सर्पों की जातियों के अनुसार उनके विषों के प्रभाव में विभिन्नता होती है अतएव उनका संहारक प्रस भी विभिन्न प्रकार का होना आवश्यक होता है। अतएव यह ठीक पता न हो कि किस प्रकार के सर्प ने मनुष्य को काटा है तो ठीक सर्प-विषहारी प्रस के प्रयोग में अड़चन होती है। फिर भी लाभ पहुँचाने में वैज्ञानिकों ने सफलता प्राप्त की है।

भारत में सर्प-विषदंश के ठीक आँकड़े बता सकना कठिन हो सकता है। ग्रामीण क्षेत्रों में कितनी ही मृत्यु हो जाती है जिनकी सूचना ठीक स्थान तक नहीं पहुँच पाती। एक अँग्रेज चिकित्सक डा० फेरर ने अनुमान किया था कि भारत में २६००० मृत्यु-संख्या प्रति वर्ष सर्प विषदंश से होती होगी। सर्प विषहारी प्रस के व्यवहार की कुछ व्यवस्था हमारे देश में भी होने से नगरों तथा कस्बों में मृत्यु-संख्या अवश्य कम होने लगी होगी।

संसार भर के साँपों की २३०० जातियाँ होती हैं। इनमें समुद्री नागों के अतिरिक्त लगभग २५० जातियाँ यथेष्ट विकसित विषदन्तयुक्त होती हैं। इनमें ७५ को छोड़ दें जो बहुत क्षुद्र आकार

की होती हैं या दुर्लभ ही होती है तो शेष १५० या १७५ जातियाँ संसार भर में घातक विषधारी कही जा सकती हैं।

वैज्ञानिकों का यह मन्तव्य है कि संसार भर में जो घातक विषधरों की जातियाँ हैं, उनको किसी बाह्य विशेष लक्षण से ही विषधर होना पहचान लेना साधारण व्यक्ति के लिए कठिन है। यदि किसी विकट रूप के सर्प को घातक विषधर पाया जाता है तो कोई दूसरा सर्प उसी तरह की बाह्य रूपरेखा प्रदर्शित कर भी निर्विष ही हो सकता है। इसके विपक्ष कोई साधारण निरापद रूप का प्रतीत होने वाला सर्प विषधर हो सकता है, परन्तु उसी रूप के दूसरे साँप निर्विष जाति के हो सकते हैं। इन कारणों से घातक विषधरों की बाह्य रूप की कोई मोटी पहचान देना कठिन है। फिर भी अपने स्थान या देश के प्रसारित सर्पों की जातियाँ पहचान लेने की क्षमता होने पर उनमें विषधरों का ज्ञान प्राप्त ही कर लिया जाता है।

भारत में करैत तथा नाग भयङ्कर विषधर साँप है। ये जबड़े के अगले भाग में तीव्र विष की प्रचुर मात्रा युक्त विषदन्त रखते हैं जो स्थिर रूप में जबड़े से मढ़े होते हैं। इसलिए यदि शब्दों द्वारा ही इनका प्रकार प्रकट करना हो तो उन्हें हम स्थिर अग्रविषदन्ती सर्प कह सकते हैं। परन्तु पृदाकु या मण्डली नाम से पुकारे जाने वाले सर्प (दबोइया) समान जातियों के दाँत बहुत बड़े होते हैं तथा मुड़कर तालु में चिपका लिये जाते हैं। इसलिए इनको भंज्यदन्ती या भंज्य विषदन्ती कहना उचित है। यह स्मरण रखने की बात है कि साँप का डँसना (सर्पदंश) बोलने का महावरा है। बहुत से लोग साँप का काटना भी कहते हैं परन्तु सच पूछा जाय डँसना तो मंडली या दबोइया के समान सर्पों का ही कहा जाना चाहिए। काटना करैत तथा नागों का कार्य मानना चाहिए। तथ्य यह है कि करैत या नाग

(कोबरा) केवल दाँत ही गड़ाकर नहीं रह जाते। वे काट कर घाव-सा बना देते हैं और काटने पर भी मुख लगाये ही रहते हैं जिससे उनके विष का प्रभाव आक्रान्त प्राणी पर भली-भाँति हो जाय। किन्तु पृदाकु (दबोइया) श्रेणी के सर्प बड़े आकार के विषदन्त को खड़ाकर आक्रान्त प्राणी के शरीर में गड़ा भर देते हैं और तुरन्त पृथक हो जाते हैं। इसे ही यथार्थ में दंशन या डँसना कहना चाहिए। इन सर्पों को अपने बड़े दाँत से पहुँचाए प्रचुर मात्रा के निकट प्रभाव का भरोसा-सा रहता है। अतएव दाँत गड़ाकर वे तुरन्त ही पृथक होकर परिणाम की प्रतीक्षा करते हैं।

सर्प विषों की परीक्षा कर वैज्ञानिकों ने यह तथ्य भी ज्ञात किया है कि करैत तथा नाग (कोबरा) आदि साँप के विष का कुप्रभाव स्नायुओं या बात संस्थान पर अधिक पाया जाता है। नाग (कोबरा) के काटने पर काटने के स्थान पर तीव्र जलन प्रारम्भ हो जाती है, अवसाद ज्ञात होने लगता है, लहर आने लगती है, मुँह से गाज निकलने लगता है, उल्टी होने लगती है, समय बीतते जाने पर नाड़ी दुर्बल और मन्द होने लगती है। घिग्घी बँध जाती है। इसके बाद क्रमशः मूर्च्छा आने लगती है। यदि उपयुक्त चिकित्सा न हो तो श्वासावरोध से बीस या तीस मिनट में मनुष्य की मृत्यु हो जाती है। यदि सर्प-विष घातक मात्रा से न्यून ही हो तो रोगी शीघ्र अच्छा भी होने लगता है। विष के लक्षण मिटने लगते हैं।

करैत सर्पों के काटने पर कोई स्थानीय प्रक्रिया नहीं होती, मनुष्य केवल अर्द्धचेतन अवस्था में मृत्यु होने तक पड़ा रहता है। करैत के विष का प्रभाव बहुत मन्द हो सकता है। कई दिनों के बाद भी कभी-कभी मृत्यु हो सकती है। अमेरिका के मूंगे या प्रवालीय सर्प (कोरल स्नेक) में भी यही सब लक्षण उत्पन्न करने वाला विष

होता है, परन्तु स्थानीय रूप से पीड़ा भी होती है। ये सभी सर्प स्नायु-संहारक या वात संस्थान को भारी आघात पहुँचाने वाले विष ही अधिक रखते हैं।

पृदाकु या मण्डली (दबोइया) सर्प के काटने पर सर्वथा दूसरे रूप का कुप्रभाव होता है। उसके काटने पर तत्क्षण ही रक्त-स्राव की प्रतिक्रिया होती है। यदि मनुष्य की मृत्यु में विलम्ब हो तो स्थानीय शोथ की वृद्धि उत्पन्न भी होने लगती है। तन्तुओं में पानी की वृत्ति हो जाती है। रक्त के रक्त कणों का संहार होने लगता है, धमनियों तथा शिराओं की त्वचा ध्वस्त होने लगती है, फलतः अधिक रक्तस्राव होने लगता है। इन कारणों का परिणाम मृत्यु ही होती है। इन रक्तनाशक प्रभाव के साथ कुछ स्नायु-संहारक शक्ति भी उनके विष में होती है।

अमेरिका के कर्कर या झनझनिया साँपों में दक्षिणी अमेरिका के एक कर्कर में रक्तनाशी प्रभाव के स्थान पर स्नायुहारी प्रभाव बहुत अधिक पाया जाता है। उसके विष से केवल श्वासावरोध ही नहीं होता, बल्कि दृष्टि-शक्ति सम्बन्धी स्नायुओं पर विशेष प्रभाव पड़ता है जिससे मनुष्य अंधा हो जाता है। कर्कर सर्प पृदाकु या मण्डली सर्पों के समकक्ष अमेरिकीय सर्प हैं जो नेत्र के आगे गड्ढा होने की व्यवस्था से एक निकटवर्ती पृथक वंश बनाते हैं जिसे गर्त्त मण्डली कहा जाता है। गर्त्त मण्डली तो भारत या एशिया में भी अपने वंश के प्रतिनिधि रखते हैं, परन्तु पूँछ में कर्कर या झनझन करने वाली अँगूठी वाले सर्प तो पश्चिमी गोलार्द्ध की ही देन हैं। यह विस्मय की बात है कि मण्डलियों या गर्त्त मण्डलियों में प्रायः रक्त-हारी विष का भंडार होता है परन्तु दक्षिणी अमेरिका के गर्त्त मण्डलियों में कर्करों को ऐसा प्रभाव न दिखाकर स्नायुहारी प्रभाव

प्रदर्शित करते पाया जाता है। पश्चिमी कर्करों या झनझनिया की उत्तरी अमेरिका की जातियाँ अपने वंश के विषधर्म को निभाती-सी हैं जिससे उनको स्नायुहारी प्रभाव दिखाने में ही समर्थ पाया जाता है। लगभग एक प्रकार के सर्पों में ही भिन्न भूभागों में रहने के कारण यह विरोधाभास प्रकट कर वैज्ञानिकों के लिए कम आश्चर्य की बात नहीं है।

स्थान का सर्प के विष पर प्रभाव पड़ता है या नहीं, यह तो कहने का कोई आधार नहीं परन्तु आहार का तो निश्चय रूप से ही प्रभाव पड़ता है। भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न आहार करने वाले सर्पों की विष-शक्ति का परीक्षण करने का प्रयत्न किया गया है जिसमें यह जानने का प्रयत्न किया गया कि एक कबूतर की मृत्यु कर सकने के लिए किस प्रकार के सर्प के विष की कितनी मात्रा आवश्यक होती है।

दक्षिणी अमेरिका के गर्त्त मण्डलियों के विष का परीक्षण कर देखा गया कि बोथ्रोप प्रजाति की इंसुलारिस जाति का विष एक मिलीग्राम के ढाई सौवें भाग की मात्रा कबूतर की रक्तवाहिनियों में प्रविष्ट किये जाने पर उसका प्राणान्त कर सकता है। मांस पेशियों में २९ मिलीग्राम का विष प्राणान्तक होता है। यह बहुत प्रबल शक्ति का विष रखने वाला सर्प है। यह दक्षिणी ब्राजील के समुद्र-तट से ४० मील दूर स्थित एक ऊँचे कगारों वाले चट्टानी टापू पर रहता है। इस टापू पर एक जाति की गौरैया ही पाई जाती है जो इस गर्त्त मण्डली का उपयुक्त आहार हो सकती है। इस चपलपक्षी को अधिकृत करने के लिए इसका विष अवश्य इतना प्रबल होना चाहिए कि वे विषदंश के बाद भाग न सकें। मण्डलियों में विषदंश के बाद ही शिकार को छोड़ देने की प्रवृत्ति भी प्रायः पाई जाती है।

इस कुलिंग या गौरैयाभक्षक गर्त्त मण्डली की तुलना में दूसरे गर्त्त मण्डलियों को न्यून प्रभावोत्पादक विष रखते ही पाया जाता है। बोथ्रोप्स एट्रोक्स जाति का गर्त्त मण्डकी जङ्गलों में कृन्तकों का आहार करता है। उसके विष की १/१०० मिलीग्राम मात्रा रक्त-वाहिनी में पहुँचाने पर कबूतर को मार सकती है। मांस पेशियों में १/२ मिलीग्राम विष पहुँचाना पड़ता है जिससे कबूतर मर सके।

बोथ्रूप्स जरारका जाति का गर्त्त मंडली कृन्तकों को ही नहीं खाता, बल्कि मण्डूकों को भी अपने आहार में सम्मिलित करता है। आहार प्राप्ति के लिए उसे अपेक्षाकृत न्यून श्रम ही आवश्यक हो सकता है। अतएव इसके विष की ३/६० मिलीग्राम मात्रा का रक्त वाहिनियों में प्रवेश कराने से कबूतर मरता है। मांसपेशियों में तो १ ७/० मिलीग्राम विष पहुँचाने पर कबूतर की मृत्यु होती है। इन उदाहरणों से प्रकट होता है कि आहार के प्रकार पर विष की तीव्रता निर्भर करती है। जिस सर्प को बहुत चपल जन्तुओं को आहार बनाना पड़ता है उनके विष अपेक्षाकृत प्रबल होते हैं, परन्तु जिनका आहार न्यून चपलता या गति के जन्तु होते हैं उनमें न्यून शक्ति का विष रखना ही यथेष्ट होता है।

सर्प नाग का विष मनुष्य के लिए हानिकारक होता है, परन्तु मछली तो उसका आहार है। इसलिए मछली के लिए उसका विष तत्क्षण घातक होता है। इसी प्रकार अमेरिका के मूंगे या प्रवालीय सर्प (कोरल स्नेक) का विष स्तनपोषियों के ऊपर मन्द गति से किन्तु निश्चयात्मक रूप से क्रियाशील होता है। परन्तु अन्य सरीसृपों पर तो अविलम्ब क्रियाशील होता है। इसका कारण यह है कि इसका आहार मुख्यतः सरट तथा अन्य सर्प होते हैं। इस आवश्यकता का

ही यह परिणाम है कि एकाकी टापू पर रहने वाले गौरैया-भक्षक गर्त्त-मण्डलो का विष उन पक्षियों पर सद्यः क्रियाशील पाया जाता है।

भारत के नाग (कोबरा) तथा ब्राजील के बोथ्रोप प्रजाति की कई जातियों के सर्प ही कदाचित सर्वाधिक प्रसारित घातक सर्प हैं। ब्राजील की एक सर्प-विषहारी परीक्षण संस्था ने एक बार १६०२ ई० में सर्प-विषहारी प्ररस निर्माण करने के लिए घोड़ों में सर्प-विष का प्रवेश करने के लिए विषधरों की माँग की तो उसे ७२६३ घातक विषधर लोगों द्वारा प्राप्त हो सके।

नाग वंशी या स्थिर अग्रविषदन्ती सर्पों का प्रसार बहुत प्राचीन काल से ज्ञात होता है। इसका एक प्रमाण यह मिलता है कि आस्ट्रेलिया तथा पपुआ आज एशिया से सर्वथा पृथक भूखण्ड हैं परंतु वहाँ के अधिकांश सर्प नागवंशी ही हैं। यह क्षेत्र बहुत दिनों से पृथक भूखण्ड ही बना रहा है। वहाँ आज के विकसित रूप के सर्प बहुत अल्प संख्या में ही पहुँच सके हैं। आस्ट्रेलिया के प्रायः सभी सर्प विषधर हैं। कुछ तो क्षुद्राकार और दुर्लभ हैं किन्तु काल-सर्प या पृदाकु (डेथ ऐडर), स्थानीय काल सर्प, व्याघ्र सर्प तथा कुछ अन्य जातियाँ भयानक होती हैं। एशिया और अफ्रीका के उष्ण भागों में तो नाग (कोबरा), करैत, मोम्बासा, वृक्ष नाग अत्यधिक भरे पड़े हैं। इनके समकक्ष प्रवालीय सर्प (कोरल स्नेक) की तीस जातियाँ अमेरिका के उष्ण कटिबंध में पाई जाती हैं। परन्तु अमेरिका की मुख्य विषधर जातियाँ गर्त्त मण्डलियों की ही हैं। उनके मुख पर नेत्र के आगे गर्त्त किस प्रयोजन से होता है, यह बता सकना कठिन ही है। गर्त्त-हीन या साधारण पृदाकु या मण्डली अमेरिका में पाये ही नहीं जाते। कर्कर या झनझनिया (रैटल स्नेक), मोकासिन, ताम्रशीर्ष सर्प (कापर हेड) या अन्य सकक्षीय सर्प गर्त्त मण्डली ही होते हैं। पूर्वी

गोलार्द्ध में भी कुछ गर्त्त मण्डली सर्प दक्षिणी-पूर्वी एशिया, (भारत, मलाया आदि) में पाये जाते हैं, परन्तु अधिकांश मण्डली गर्त्त हीन या साधारण पृदाकु (दबोइया के समकक्ष सर्प) ही होते हैं। इनमें अफ्रीका के महा पृदाकु तथा भारत के दबोइया को भीषण विषधर कहा जा सकता है।

जलनागों को नाग ही कहना चाहिए जो समुद्रजीवी बन गये हैं। इनमें पतवारनुमा चपटी दुम और सिर के छोर पर नासिका होती है जिसमें कपाट की भी व्यवस्था होती है। वे अटलांटिक को
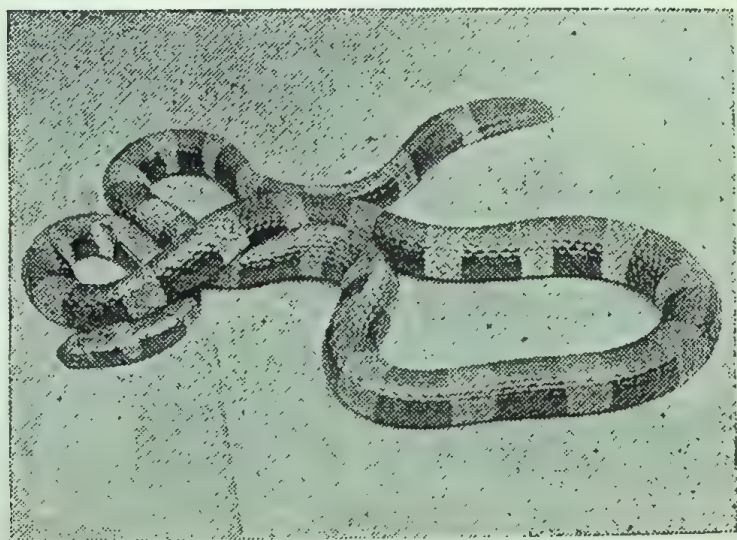
चित्र ३—जलनाग (लेटिकौंडा कोलुब्राइना)

छोड़ कर सभी उष्ण सागरों में पाये जाते हैं। लाल सागर, फारस की खाड़ी, जावा के समुद्र, भारत सागर और श्याम या थाईलैंड की खाड़ी में ये भरे पड़े मिलते हैं। पनामा की खाड़ी में भी एक जाति पाई जाती है।

प्रश्न यह उठता है कि इन सब काल सर्पों से किस प्रकार रक्षा

पाई जाय। पौराणिक कथाओं में प्रचारित गरुड़ का आधुनिक युग में कहीं पता नहीं। कदाचित देवों के वाहन बनने के पावन कर्त्तव्य के आगे उसे इस मर्त्यलोक के मरणधर्मा मनुष्यों की काल सर्पों से रक्षा करने का कार्य ही उपेक्षणीय ज्ञात होता है। किसी सेक्रेटरी बर्ड नामक विदेशी पक्षी द्वारा जहाँ-तहाँ सर्पों के मारे जाने की घटना अवश्य पाई जाती है। कोई छोटी-मोटी चील भी कहीं किसी छोटे-मोटे सर्प का भले ही संहार कर देती है, जिसे आप चाहें तो गरुड़ का उच्च पद प्रदान कर सकते हैं, परन्तु हमें सर्पों के विष से रक्षा की व्यावहारिक सहायता इनसे नहीं प्राप्त हो सकती।

नकुल सर्पों को मार सकते हैं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं, किन्तु एक तो सभी विषधर उनकी शक्ति के मान के नहीं, दूसरे वे सर्पों के घातक विष से सुरक्षित नहीं पाये जाते। वे तो केवल अपनी स्फूर्ति से ही सर्प का वध कर पाते हैं। किसी जड़ी द्वारा सर्प-विष के प्रभाव का शमन करने की युक्ति नेवलों द्वारा किये जाने की बात पूर्णतः निराधार और अवैज्ञानिक आस्था ही है। जहरमोहरा भी एक भारी धोखा है। चूने के मिश्रण युक्त पदार्थों से बना होने पर यह रक्त या जल-सिंचित अंत्र या स्थल पर चिपकाने पर चूने द्वारा द्रव के शोषण से कुछ समय तक चिपका रह सकता है, परन्तु इससे विषहरण संभव होने के तथ्य पर इस वैज्ञानिक युग में विश्वास करने से बढ़ कर कोई अधिक आत्म-वंचना नहीं हो सकती।

"लोहा ही लोहे को काटता है" इस युक्ति के अनुसार सजाति-भक्षण क्रिया का उदाहरण हम मलाया के नागराज को उपस्थित करते देखते हैं। वह अन्य घातक विषधरों को अपना आहार बना लेता है, परन्तु हमारी बचत कहाँ तक होती है, इस पर थोड़ा-सा भी विचार

करने पर यह लाभप्रद सौदा नहीं प्रतीत होता। कोई अन्य छोटा-मोटा घातक विषधर काट ले तो कदाचित् किसी प्रकार मनुष्य की प्राण-रक्षा हो भी जाय, परन्तु जब यम के रूप साक्षात् नागराज के विषदंश का दुर्भाग्य किसी को प्राप्त हो तो उसकी रक्षा कैसे हो। इसके विपरीत मुस्सुरना को स्वयं निरापद रहकर अन्य घातक विषधरों का आहार करते अवश्य पाया जाता है। परन्तु यह आह्लादकारी घटना बहुत ही दूर के विदेश की है। जंगल में मोर नाचने समान ही हमारे भाग्य से अछूती है।

इन सब परिस्थितियों में साँपों की विषधर जातियों की सम्यक पहचान, प्रसार-क्षेत्र आदि का ज्ञान होना तथा उनसे बचना ही सबसे श्रेयस्कर है। विज्ञान की सहायता लेकर सर्प-विषहारी प्ररसों के उपयोग का अधिकाधिक अवसर उपस्थित करना तथा उनसे लाभ उठाना ही दूसरा सफल रक्षण मार्ग है।

घातक विषधर सर्पों में जलनाग कम महत्व के नहीं हैं। जलनाग या समुद्री नागों में सभी सर्पघातक विषधर होते हैं। ये भारत तथा पैसिफिक महासागर के उष्ण कटिबन्धीय भागों में पाये जाते हैं। उनमें कुछ को छोड़ कर शेष सभी आजीवन समुद्रों में ही रहते हैं। वे प्रायः समुद्र की लहरों पर बहते हुए पाये जाते हैं। किन्तु वे अपने फेफड़ों को फैला कर वायु अधिक मात्रा में संचित रख सकने के कारण पानी में अधिक गहराई तक गोता लगा सकते हैं। उनके आकार की विशेषता पूँछ का पतवारनुमा होना है। वह ग्रहणशील या लिपटनशील होती है। मूँगे या समुद्री शैवाल से उसे लिपटा कर वे दृढ़ अवलम्ब प्राप्त कर लेते हैं। इनकी नासिका सिर के ऊपर होती है तथा उसमें कपाटीय द्वार होता है। जब श्वास लेना होता है तो

वे पानी के तल पर सिर कर नासिका के कपाट खोल लेते हैं। पानी के अन्दर डूबने पर नासिका के कपाट बन्द कर लेते हैं। इनका आहार पूर्णतः मछलियाँ हैं। निगलने के पहले ये अपने विष से उन्हें मूर्च्छित कर लेते हैं। बड़े से बड़ा समुद्री नाग नौ फुट लम्बा होता है।

स्थलीय नाग या केवल नागवंश के सर्पों में स्थलीय प्रवाल सर्प तो सुन्दरता की मूर्ति ही होते हैं परन्तु विषधरपन में "विषरस भरा कनक घट जैसे" की उक्ति ही चरितार्थ करते हैं। इनके शरीर पर गहरा लाल, पीले और काले रंग की पट्टियाँ बनी होती हैं। ऐसा ज्ञात होता है कि विषधर होने के विज्ञापन रूप में ही ये रंगीन प्रमुख पट्टियाँ होती हैं। इन सर्पों का आकार छोटा ही होता है परंतु ये घातक विषधर होते हैं। अमेरिका में दीर्घतम आकार के कर्कर या झनझनिया सर्प के बराबर घातक विष इन छोटे सर्पों में होता है। अधिकांश विषधर सर्प तो शत्रु को विषदंश कर स्वयं भाग जाते हैं। किन्तु प्रवाल सर्प विषदंश के बाद भी कुछ देर तक शत्रु के शरीर में दाँत गड़ाये ही रहता है जिससे कुछ और विष का प्रसार हो जाय। इस तरह अधिक से अधिक विष शत्रु के शरीर में पहुँच जाता है।

प्रवाल सर्पों का प्रसार संयुक्त राज्य के दक्षिणी भाग तथा दक्षिण और मध्य अमेरिका में पाया जाता है। इनका सिर छोटा और गोल होता है। वह गर्दन से बिल्कुल स्पष्ट नहीं रहता। शरीर गोला और लम्बोतरा होता है।

भारत तथा दक्षिणी-पूर्वी एशिया में करैत या कौड़िया साँप पाया है जो स्थलीय विषधर सर्पों में विष के लिए प्रसिद्ध है। यह चार फुट तक लम्बा होता है। इसका रंग ऊपर गहरा भूरा या

नीलापन युक्त होता है और उस पर श्वेत रंग की पट्टियाँ या धब्बे होते हैं। एक पट्टित या चितकौड़िया भी होता है जिसमें चमकीले श्वेत और काली मुद्रिकाओं का चिह्न होता है। साधरण करैतों के प्रसार-क्षेत्र में ही यह भी पाया जाता है। करैत सर्पों का आहार छोटे स्तनपोषी जन्तु ही नहीं हैं बल्कि अन्य सर्प भी होते हैं। इसका संस्कृत नाम कैरात है लेकिन बोलचाल की भाषा में यह नाम है। अँग्रेजी में तो क्रैत रूप धारण कर सका है।

फणी या कोबरा को वैज्ञानिक नाजा प्रजाति का साँप कहते हैं। बोल-चाल की भाषा में यह फनियर नाम से पुकारा जाता है। गर्दन को फैलाकर नीचे की पसलियों पर अवलम्बित करना संभव होता है, इसी को फन या फण कहा जाता है। सिर गर्दन से स्पष्ट विभिन्न रूप रक्खे दिखाई पड़ता है। नेत्र बड़े होते हैं। फणी सर्पों की एक दर्जन जातियाँ होती हैं उनमें सात अफ्रीका में पाई जाती हैं। अन्य जातियाँ भारत तथा अन्य पूर्वी एशियाई देशों में पाई जाती हैं। फणी सर्पों की विभिन्न जातियाँ फणों के विभिन्न रूपों द्वारा निश्चित की गई हैं। वे बहुत विषधर होती हैं। क्रोध या उत्तेजना में होने पर फणी सर्प अपना फण फैला लेते हैं। फणी तो सभी ही भयानक माने जाते हैं परन्तु उनमें भी भारतीय फणी सर्प विशेष कुख्यात हैं।

भारत में फणी या नाग की पूजा भी की जाती है। लोगों का तो यहाँ तक अंधविश्वास है कि सारी धरती ही शेष नाग नामक किसी काल्पनिक फणी के सिर पर स्थित पड़ी है। एक भारतीय कोबरा के फण के ऊपर चश्मे के समान चिन्ह बना होता है। अन्य फणियों के फण पर मुद्रिका या अन्य रूप के चिन्ह होते हैं। एक एशियाई फणी में फण का रङ्ग पूर्णतः गहरा भूरा या काला होता है। फणी के विषदन्त बड़े न होने पर भी उनके विष का हलाहलपन

अधिक होता है। घातक विष तथा फण की विचित्रता से यह अधिक कुख्यात है।

फणी सर्प विश्राम की इच्छा तथा क़ीड़े खाने की वृत्ति के कारण प्रायः घरों, बरामदों आदि में बस्ती के अन्दर चला आता है। उसका उद्देश्य मनुष्य का वध नहीं होता, परन्तु कभी पैर से अँधेरे में दब जाने पर काट बैठता है और मनुष्य की मृत्यु का कारण होता है।

नागराज का निवास मलाया और हिन्द-चीन में पाया जाता है। यह सबसे भयानक ही नहीं होता, बल्कि घातक सर्पों में सबसे बड़े आकार का होता है। एक सर्पशाला में तो अठारह फुट चार इंच लम्बा नागराज प्राप्त हुआ था। यह विषधर या अन्य सर्पों को खा जाता है। यह जहाँ पाया जाता है वहाँ बहुसंख्यक विषधर सर्प पाये जाते हैं अतएव उनमें से कुछ को खाकर यह आंशिक रूप में मानव-हित करता माना जा सकता है। नागराज मुख्यतः विषधर सर्पों को ही खाता है किन्तु यह जान-बूझकर पृदाकु या मंडली (दबोइया सरीखे) सर्पों को प्रायः नहीं खाता जो दीर्घाकार विष-दन्तों वाले होते हैं और जिनके दाँत शरीर में गहरा घाव करते हैं। एक जंतुशाला में एक नागराज के साथ पाँच छः साधारण फणी या नाग रक्खे गये किन्तु रात व्यतीत होते ही प्रातः काल अन्य सब फणी तो लुप्त हो गये थे, केवल नागराज ही रह गया था। उसने उन सब फणी सर्पों को हड़प कर लिया था। ऐसे भयंकर नागराज के काटने पर मनुष्य दो घंटे में ही मृत हो जाता है।

मिस्र का कोबरा केवल मिस्र में ही नहीं पाया जाता, बल्कि इस जाति के सर्पों का प्रसार मिस्र से नैटाल तक अफ्रीका में है। इसके शल्क में अधिक चमक नहीं होती।
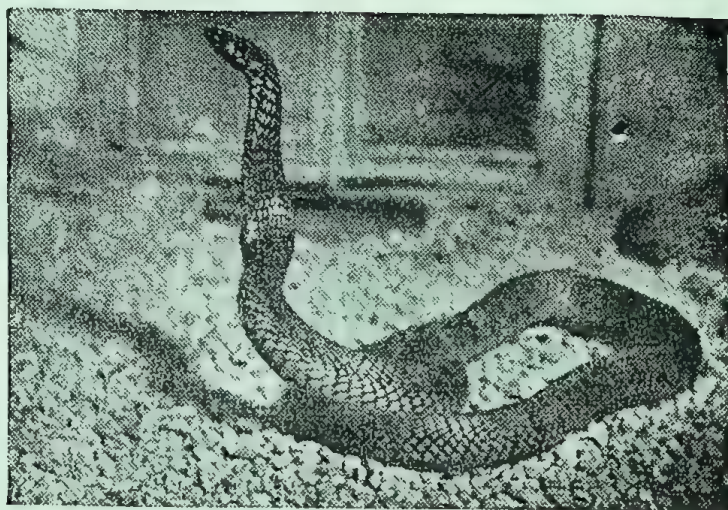
चित्र ४—मिस्री कोबरा

किसी नाग सर्प के चित्र प्राचीन मिस्री स्मारकों पर अङ्कित पाये जाते हैं। मदारी लोग मिस्री तथा भारतीय फणी सर्पों का जनता में प्रदर्शन कर अपना जीविका-निर्वाह करते हैं।

दक्षिण अफ्रीका के रिंघल नाग तथा पश्चिमी अफ्रीका के कुछ नाग में यह गुण पाया जाता है कि शत्रु या शिकार के शरीर से संपर्क किये बिना ही अपने विष का प्रहार कर सकने में समर्थ होते हैं। विष ग्रंथि तथा विषवाहक नलिका इतनी दबाव में रहने वाली होती है कि उनके सहसा प्रसारण से विषदन्त के छोर पर से विष की फुहार दो धाराओं में कई गजों दूर तक पहुँच सकती है। इस भारी कठिनाई के कारण सर्पशालाओं में इन सर्पों को आहार पहुँचाने के लिए विशेष पुष्ट चश्मों का उपयोग करने के लिए सेवकों को विवश होना पड़ता है। उन नाग सर्पों के विषदन्तों से फुहार बहाये विष से उनके कठघरे की काँच की दीवाल भीतर की ओर

आप्लावित होती रहती है। यदि यह विष किसी खुले घाव में पहुँच जाय तो भयानक परिणाम हो सकता है। यदि यह विष नेत्रों में पहुँचे तो सप्ताहों तक प्रदाह रह सकता है; स्थायी रूप से नेत्र अंधे बन सकते हैं। किन्तु तुरन्त ही नेत्रों को पानी से धो लिया जाय या नदी, जलाशय आदि में गोता लगाकर विष घुल जाने का अवसर दिया जाय तो कोई दुष्परिणाम नहीं होता।

अफ्रीका का मम्बा सर्प भी नागवंश का ही होता है। इसका निवास उष्णकटिबन्धीय तथा दक्षिणी अफ्रीका में पाया जाता है। यह अफ्रीका का सबसे अधिक भयानक सर्प है। इसकी कई जातियाँ पाई जाती हैं। इनका बदन बहुत ही दुबला और सिर छोटा होता है। देखने से ये विषधर नहीं ज्ञात पड़ते। ये भूमि पर या वृक्षों पर बड़ी तीव्र गति से उड़ने समान कुलाँच मारते हैं। जब इनके संतानोत्पादन का मौसम होता है उस समय इनमें इतनी त्वरित तथा भीषण रूप में आक्रमण करने की प्रवृत्ति पाई जाती है कि आक्रान्त को अपनी रक्षा का समय ही मिलना दुर्लभ होता है। प्रमुख मम्बा की जाति नौ फुट लम्बी होती है। इस जाति का सर्प बड़ा विषैला और आक्रामक होता है। किसी भी आगन्तुक को निकट देखकर उस पर आघात कर बैठता है। इसकी दो जातियाँ होती हैं, एक हरी, दूसरी काली। हरा मम्बा वृक्ष की शाखाओं में अपना निवास बनाता है। जङ्गल के बीच में कटे हुए मार्ग के ऊपर फैली हुई लता द्रुमादि और शाखाओं में लिपटे पड़ा रहना अधिक पसंद करता है। इसका परिणाम यह होता कि जब उस मार्ग से कोई मनुष्य जाता होता है तो उसके मुँह या कंधे को काट लेता है। काला मोम्बा भूतल से दूर जाने का प्रायः साहस नहीं करता। भूमि पर चूहे-चूहियों आदि को खाता रहता है।

आस्ट्रेलिया के अधिकांश सर्प अग्र विषदन्ती होते हैं। एक घातक जाति डेथ ऐडर कहलाती है। वह देखने में मंडली या पृदाकु सर्प समान ज्ञात होती है। उसका सिर पुष्ट होता है। सिर बहुत भारी होता है और गर्दन से स्पष्ट पृथक पहचाना जाता है। मलक्का और न्यूगिनी में भी यह सर्प पाया जाता है। इसका रङ्ग लाल मिला भूरा होता है। उस पर आड़े रूप में सफेद पट्टियाँ होती हैं।

मंडली या पृदाकु वंश के साँप पूर्वी गोलार्द्ध में पाये जाते हैं। इस वंश के साँप प्रायः पिंडज या सदेहजन्मा होते हैं। भारत में टिकपोलंगा या दबोइया नामक साँप इस वंश का पाया जाता है। सीलोन, बर्मा, थाईलैंड (स्याम) और सुमात्रा में भी यह पाया जाता है। इस सर्प का रङ्ग बहुत मटमैला खाकी या भूरा होता है जिसमें काले हलके रङ्ग की अँगूठियों से घिरी मटमैले लाल धब्बों की शृङ्खला होती है। इसका विष केवल नागराज को छोड़कर शेष अन्य सभी सर्पों से अधिक घातक होता है। इसके काटने पर कुत्ते की मृत्यु एक
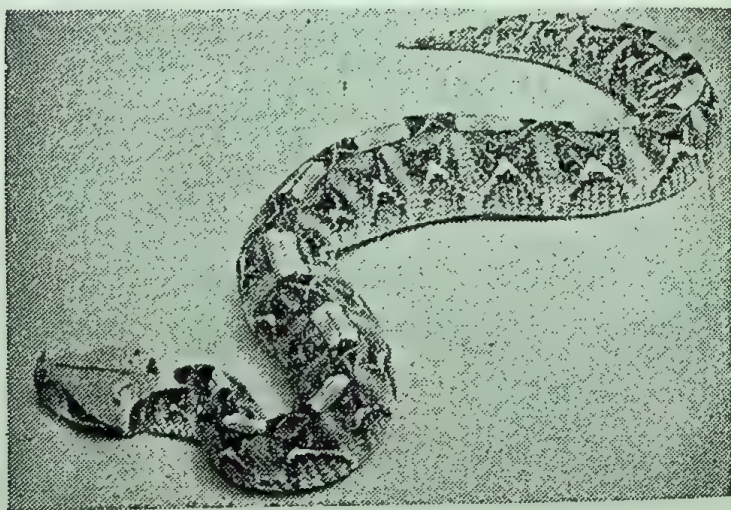
चित्र ५—गैबून मंडली

घण्टे में ही हो जाती है। मनुष्य की मृत्यु चौबीस घंटे के अन्दर हो जाती है।

एक मंडली सर्प डमरू-चिह्नित या गैबून वाइपर कहलाता है। यह बड़ी भयानक आकृति का होता है। इसकी लम्बाई पाँच फुट होती है। इसके चमड़े का रङ्ग हल्का भूरा होता है जिस पर गहरे भूरे और नीलारुण रङ्ग के धब्बों तथा गहरे भूरे रङ्ग के डमरू समान धब्बे शृङ्खला रूप में होते हैं। इन सब रङ्गों का मेल एक विचित्र रंगीन दृश्य उपस्थित करता है।

यह अफ्रीका का अत्यधिक स्थूलकाय घातक सर्प है। यह देखने में भी उतना ही भीषण है जितना भयानक घातक है। इसके विषदन्त एक इंच से भी अधिक लम्बे होते हैं। विष-थैलियों में बहुत अधिक विष संचित रहता है। इसके विष में स्नायविक तथा रक्त की विषाक्तता दोनों ही प्रकार के विष उत्पन्न करने की शक्ति होती है।

इसके बदन का रङ्ग वीभत्स होता है, उसमें मटमैले बादामी, नीले लाल और कालापन मिश्रित लाल रंगों की मिलावट होती है।

उष्णकटिबंधीय तथा दक्षिणी अफ्रीका में मंडली सर्प होते हैं, उनमें सिर गर्दन से स्पष्ट प्रदर्शित नहीं होता। वह समरूप वर्गों से मंडित होता है। इनमें विष की थैली बहुत लम्बोतरी होती है और वह शरीर के दोनों ओर शरीर के अगले तिहाई भाग तक फैली रहती है। दक्षिण का एक सर्प इसी प्रजाति का होता है जिसे रात्रि पृदाकु (नाइट ऐडर) कहते हैं। वह तीन फुट तक लम्बा होता है। अन्य सभी मंडली वंशी जातियाँ पिंडज या सदेहजन्मा ही होती हैं। परन्तु इस जाति का सर्प अंडे ही देता है। इसका वैज्ञानिक नाम कासस रोम्बिएटस है।

एक मंडली सर्प के थूथन पर एक उभाड़ होता है जो एक इंच तक लम्बा हो सकता है। इसकी त्वचा का रङ्ग नीलारुण, लाल और पीला होता है।

फरडी लैंस—दक्षिणी मेक्सिको से लेकर ब्राजील तक पाया जाता है। ब्राजील में इसकी यथेष्ट संख्या पाई जाती है। इसका आकार बड़ा होता है। इसलिए एक बार इसके काटने से जितना विष
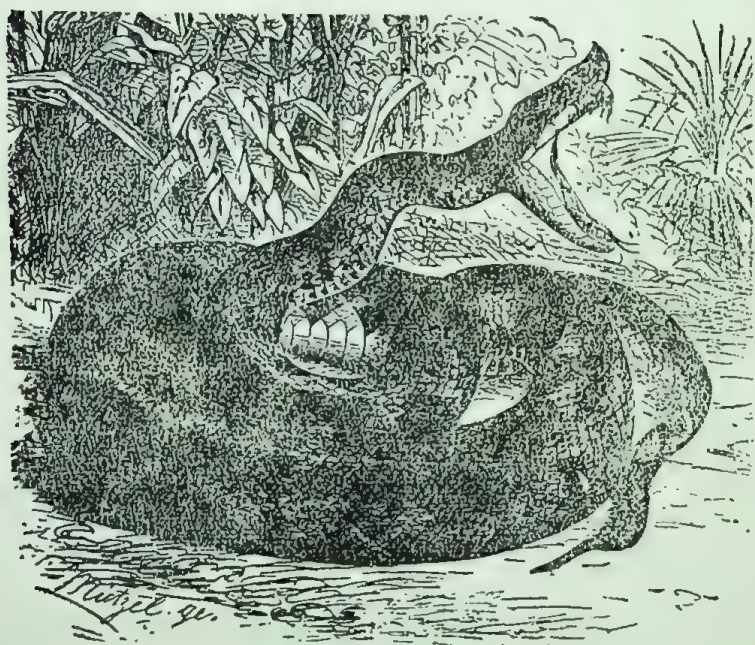
चित्र ६

शरीर में पहुँचता है वह झिनझिनिया के काटने से तिगुना होता है। इस कारण इसका विष झिनझिनिया के समान विषैला होने पर भी भयानक प्रभाव डालता है।

अफ्रीका में मंडली वंश के बड़े सर्पों की जातियों का प्रमुख निवास-सा है। उनमें पफ ऐडर (गर्जक मंडली) जाति के सर्पों का सबसे अधिक प्रसार है। अफ्रीका के छोटे जन्तुओं का यह काल है जो

इसके काटने पर तुरन्त मर जाते हैं। सहारा और अरब मरुस्थल के दक्षिण में अंतिम छोर उत्तमाशा अंतरीप (केप आफ गुड होप) तक के भूभागों में यह जाति फैली पाई जाती है। क्रुद्ध होने पर यह बड़े जोर से फुफकार छोड़ता है। इसीलिए इसका यह नाम पड़ा है। इसके बदन पर धब्बों के कारण ऐसा रूप बना होता है कि
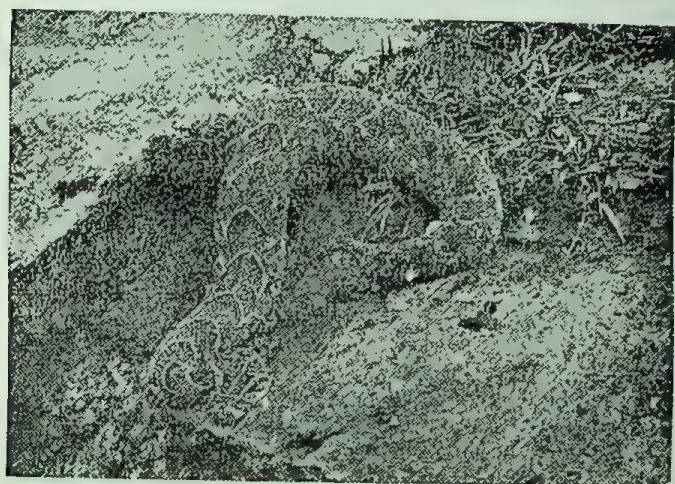
चित्र ७—गर्जक मंडली

यह वातावरण में छिप-सा जाता है। यह साढ़े तीन फुट लम्बा और तीन इञ्च व्यास की गोलाई में मोटा होता है। विषदन्त बड़े विशाल होते हैं।

पफ मंडली का प्रसार उष्णकटिबन्धीय दक्षिणी अफ्रीका के बहुत से क्षेत्रों में है। उत्तेजित किये जाने पर यह प्रत्येक श्वास के समय इतनी अधिक तीव्रता से फुफकारता है कि उसके फुफकार का शब्द कई गज की दूरी तक सुनाई पड़ सकता है। इसका रङ्ग गहरा खाकी या भूरा होता है। उसमें सफेद या धुँधले पीले रङ्ग की चन्द्राकार लकीरों से पृथक बने काले बिल्ले या फीतेनुमा चिह्न होते

हैं। यह दक्षिणी अफ्रीका का बहुत डरावना साँप होता है किन्तु इसका विष बहुत अधिक प्रभावोत्पादक नहीं होता। इसका काटना सदा घातक ही नहीं सिद्ध होता। इस साँप की लम्बाई चार फुट होती है।

उत्तरी अफ्रीका, अरब और फिलस्तीन में एक छोटी जाति के मंडली सर्प होते हैं। उनका रङ्ग पीला-सा या हल्का भूरा होता है। इनका निवास मरुस्थल में होता है इस कारण इसका यह रङ्ग सर्वथा उपयुक्त होता है। उत्तरी अफ्रीका का शृङ्गीय मण्डली प्रायः बालू के भीतर शरीर छिपाये पड़ा रहता है और उसके सिर पर की सींग ही बालू के ऊपर दिखाई पड़ती रहती है। उत्तेजित होने पर यह अपने शरीर की कुण्डली को एक दूसरी से घर्षित करता है। उससे वैसा ही शब्द उत्पन्न होता है जैसा झनझनिया या कर्कर साँप की पूँछ की अँगूठियाँ खनखनाने से होता है।
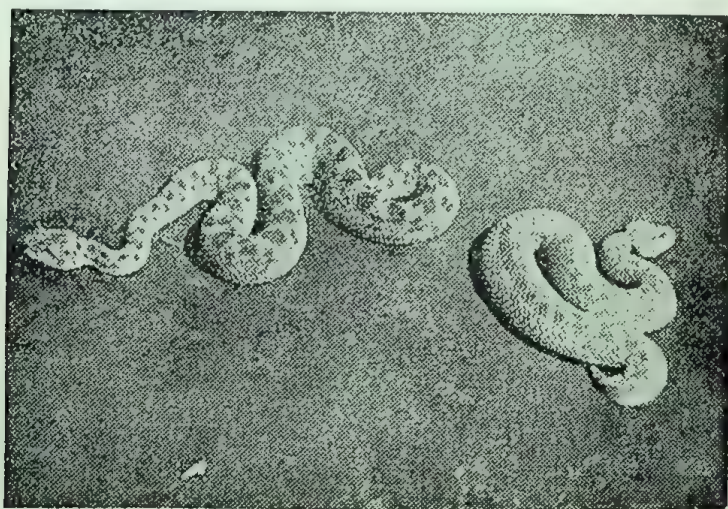
चित्र ८—मिस्र का मरुभूमीय मंडली सर्प

मिस्र के इस मंडली सर्प का रङ्ग अलग-अलग जगहों में वहाँ के रेतीले तल के अनुकूल विभिन्न रूप का बलुहा होता है। यह साँप

अपना बदन चपटा कर रेत में छिपने की युक्ति करता है। चपटे बदन के किनारों से यह रेत को फेंक कर अपने बदन के ऊपर डाल लेता है। यह जहरीला होता है।

इंगलैंड में भी एक मंडली सर्प होता है जो वहाँ का एक मात्र विषैला सर्प होता है। इसका रङ्ग सलेटी हल्का भूरा, हल्का लाल या गहरा भूरा होता है। उसमें पीठ के बीच में एक काली टेढ़ी-मेढ़ी रेखा बनी चली गई होती है। हल्के रंग के साँप प्रायः नर ही होते हैं और गहरे भूरे या लाल मिले भूरे रंग का मंडली मादा ही होती है। ये सर्प शीतकालीन दीर्घ निद्रा के पश्चात् मार्च में जगते हैं। इनके सिर के पीछे सम द्विबाहु कोण की खड़ी आकृति-सा चिन्ह होता है।

ग्रीष्म के अन्त में इनसे बीस शिशुओं तक का जन्म होता है। इन शिशुओं में बड़ी क्रियाशीलता होती है। आदमी के निकट पहुँचते ही विद्युत् वेग से बिल्कुल लुप्त हो जाते हैं। इस कारण बहुत से लोगों की यह धारणा बनी दिखाई पड़ती है कि सर्पिणी अपने शिशुओं को खा जाती है। यथार्थ बात यह है कि मनुष्य को केवल दृष्टि-विभ्रम होता है। कभी इस मंडली सर्पिणी का पेट चीरने पर पेट के अंदर ही चलते फिरते सर्प शिशु मिल जाते हैं। उससे तो ऊपर की भ्रान्त धारणा को और भी बल मिलता है परन्तु सत्य यह है कि पेट के अंदर मिले सर्प-शिशु वे शिशु नहीं होते जो जन्म धारण कर चुके होते हैं। बल्कि वे पेट में ही उस दशा तक बढ़े और चलते फिरते शिशु होते हैं जिन्हें शीघ्र ही क्रियाशील शिशु रूप में सदेह जन्म धारण कर बाह्य संसार में आना होता है। इस जाति के साँप की लम्बाई सवा दो फुट होती है।

गर्त्त मंडली या कपोल-रंध्रीय मंडली में नाक और आँखों के मध्य छिद्र होता है। इस विशेषता के कारण ही इस वंश का यह नाम है। इसकी चार प्रजातियाँ हैं—एगकिस्ट्रोडोन, लचेसिस, सिस्ट्रूस, और क्रोटेलस। इनमें सिस्ट्रूस और क्रोटेलस दोनों ही प्रजातियाँ कर्कर या झनझनिया होती हैं। एगकिस्ट्रोडोन प्रजाति के सर्प छोटे और पुष्ट होते हैं। ऊँचे सिर पर बड़े कवच होते हैं। जल मोकासिन और कापर हेड नाम की दो जातियाँ इसमें विशेष प्रसिद्ध हैं। ये उत्तरी अमेरिका में पाई जाती हैं। मोकासिन का रंग ऊपरी तट पर भूरा होता है शरीर के बगल में गहरे रंग की खड़ी पट्टियाँ होती हैं। आँख से मुख के कोण तक एक श्वेत, हल्की पीली या गहरी भूरी पट्टी बनी होती है। कापर हेड या ताम्र शीर्ष का रंग पीला-सा या लाल-सा होता है उस पर भूरी या मटमैले लाल रंग की आड़ी पट्टियाँ बनी होती हैं।

चित्र ६—कुदाकू मंडली

यह सर्प मध्य अमेरिका में पाया जाया है। इसकी लंबाई एक गज से कुछ कम होती है। उष्ण प्रदेशीय अमेरिका के प्रदेशों के अन्य मंडली सर्पों की तुलना में आकार के अनुपात
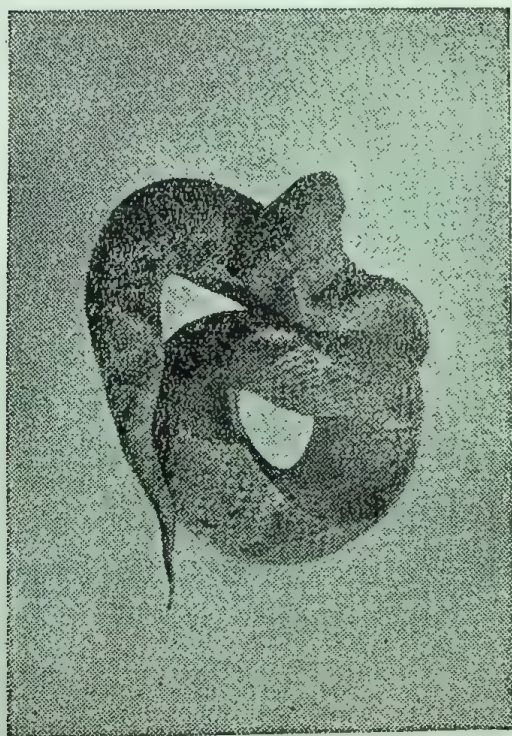
से सबसे स्थूल मंडली कहा जा सकता है। इसका आक्रमण भी भयानक होता है। क्रुद्ध होने पर आक्रान्त जंतु को काटने के लिए यह अपना पूरा बदन उछाल कर दो फुट आगे तक फेंक देता है। इसकी कुंडली में रुकावट डालने वाली कोई लम्बी किनारी या तली हो तो वहाँ यह दो फुट से भी अधिक दूर तक उछाल मार सकता है।
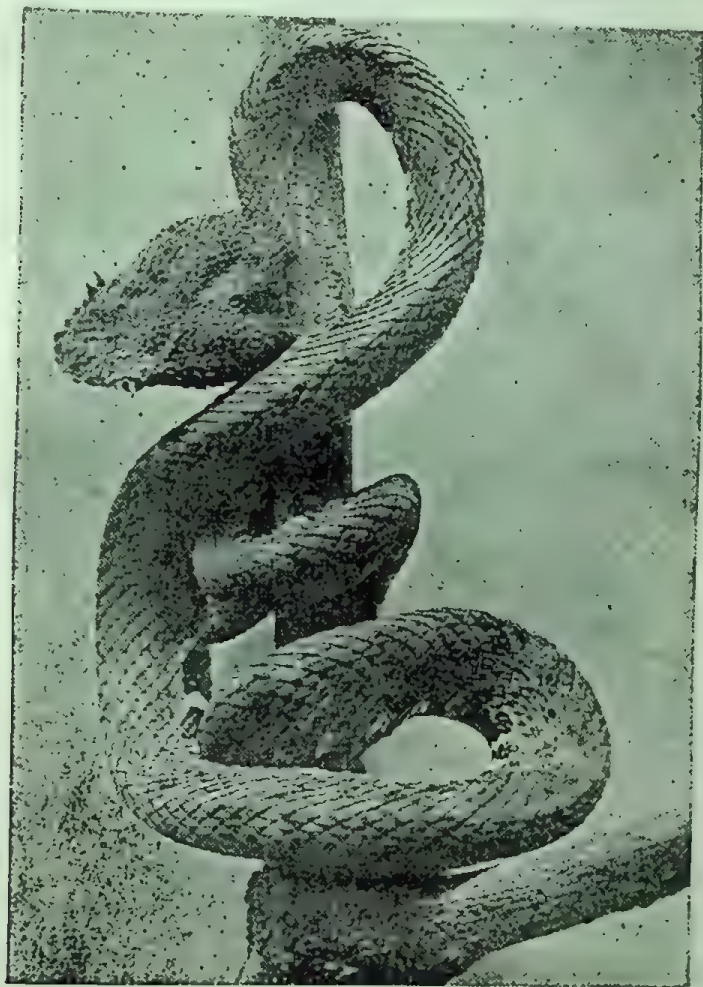
चित्र १०—शृंगीय ताल मंडली

शृङ्गीय ताल मंडली वृक्षचारी होता है इसकी मुखाकृति भीषण होती है। यह क्षुद्रकाय किन्तु अधिक घातक होता है। इसके विषदन्त अपेक्षाकृत दीर्घकाय होते हैं और विष-थैली में प्रचुर विष संचित रहता है। इनके शरीर का रंग जंगल के वातावरण से इतना मिला-जुला रहता है कि जंगल के यात्रियों को इनकी विद्यमानता का सहज पता नहीं चल पाता। ऐसे छद्म रूप से धोखा खाने पर इनका विषदन्त हाथ मुंह पर ही प्रहार कर सकता है। एक दल में ही चलने वाले कई व्यक्तियों की मृत्यु इस कारण सहज ही हो सकती है। यह होंडुरास में पाया जाता है।
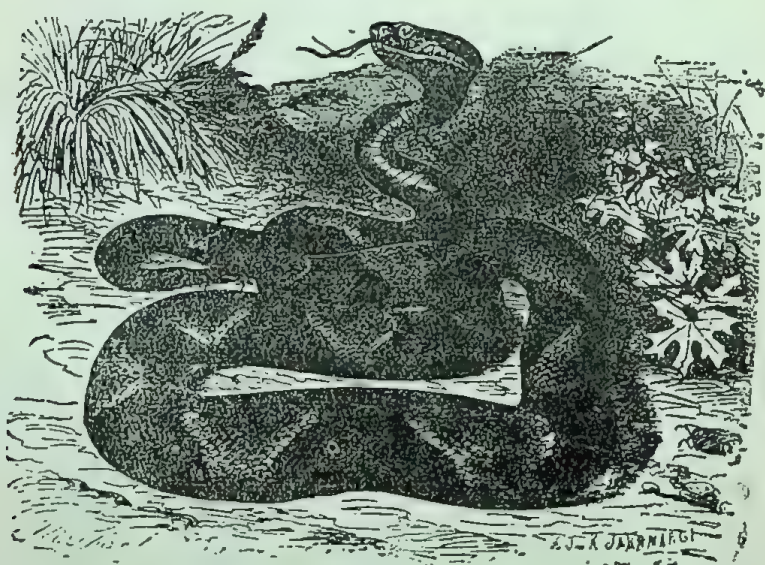
चित्र ११—ताम्रशीर्ष (कापर हेड) सर्प

मोकासिन और कापरहेड, दोनों ही बड़े जल-प्रेमी सर्प हैं। ये नदियों और तालाबों के किनारे पाये जाते हैं। इनमें मोकासिन विशेष जल-प्रेमी होता है। यह सर्वभक्षी होता है। यह मछली, मेढक, स्तन-पोषी जंतु तथा अन्य सर्पों तक को अपना आहार बनाता

है। एक सर्प तो कच्चा मांस खिलाकर ही सर्पशाला में जीवित रहते पाया गया था। उसे वह निगल जाया करता था।

चित्र १२—मोकासिन

लचेसिस प्रजाति के सर्प कुछ दुबले-पतले से होते हैं। इनका प्रसार दक्षिणी-पूर्वी एशिया, और मध्य तथा दक्षिणी अमेरिका में है। इसके सिर के ऊपरी तल पर शल्क या छोटे कवच होते हैं। एक सर्प पूज्य मंडली या पूज्य पृदाकु होता है जो दक्षिणी-पूर्वी एशिया में पाया जाता है। इसकी लम्बाई तीन फुट तक होती है। पेनांग (बर्मा) में यह सर्प मन्दिरों में आदरपूर्वक आश्रय प्राप्त करता है। इस कारण इसका नाम देवालय सर्प है। इसका रंग घास की हरि-

याली या नीलेपनयुक्त हरियाली का होता है किन्तु अधिक वयस्क का रंग कलौंछ हो जाता है।

ब्राजील तथा पश्चिमी द्वीपसमूह के कुछ द्वीपों में लचेसिस प्रजाति का गर्त्तमंडली पाया जाता है जिसकी लम्बाई छः फुट तक होती है। इसे जरारका नाम दिया गया है। इसे मार्टिनिक में बड़ा भीषण समझा जाता है। कहवा और ईख के खेतों में कितने ही श्रमिक इनके काटने से मर जाया करते हैं। इनका रंग भूरा या खाकी होता है। उसमें गहरे रंग के धब्बे या आड़ी पट्टियाँ होती हैं। बगलों में धूमिल रंग को घेरने वाले गहरे रंग के त्रिभुज होते हैं। उत्तेजित होने पर यह सर्प अपनी पूँछ कंपित करने का अभ्यस्त होता है। जब सूखी पत्तियों के मध्य चलते हुए वह ऐसा करता है तो उसी प्रकार का शब्द उत्पन्न होता है जैसे कर्कर सर्प की पूँछ करती है। ब्राजील के कुछ भागों में इस विषैले सर्प का नाश करने के लिए कुछ वर्षों पूर्व जनता को साँप मारकर उसका सिर भेजने पर कुछ पुरस्कार दिया जाता था। लोगों ने इससे लाभ उठाने के लिए इस साँप को ही पालना प्रारम्भ किया। यह धंधा बड़ा लाभकर सिद्ध होने लगा क्योंकि एक बार में यह सर्प पचास शिशु तक उत्पन्न करता है। अतएव उन्हें धीरे-धीरे मार कर सरकार से पुरस्कार प्राप्त किया जा सकता था। यह बात जब खुली तो इस तरह का पुरस्कार देना बन्द किया गया।

बुश मास्टर अमेरिका के उष्ण कटिबन्धीय प्रदेशों का अत्यन्त भयानक सर्प है। इसकी लम्बाई बारह फुट तक होती है। इसे मण्डली-विषधर सर्पों का सम्राट कह सकते हैं। इसके विष में मात्रा की दृष्टि से बहुत अधिक घातक प्रभाव नहीं होता किन्तु विषदन्त इतने विशाल होते हैं और एक बार के काटने में इतना अधिक विष

आक्रान्त जन्तु के शरीर में प्रविष्ट हो जाता है कि इसे नई दुनिया के घातक सर्पों में सबसे अधिक घातक माना जा सकता है ।

चित्र १३—बुश मास्टर का मुँह

चित्र १४—बुश मास्टर

मध्य तथा उष्ण कटिबन्धीय अमेरिका के बुश मास्टर लचेसिस

प्रजाति का सर्प है। यह जङ्गलों में रहता है तथा अंडज है। मादा अंडों के चारों ओर अपनी गेंडुरी फैला कर उन्हें सेती है।

झनझनिया या कर्कर सर्प की बीस जातियाँ देखी गई हैं जो क्रोटेलस और सिस्ट्रूरस प्रजातियों की होती हैं। क्रोटेलस प्रजाति के
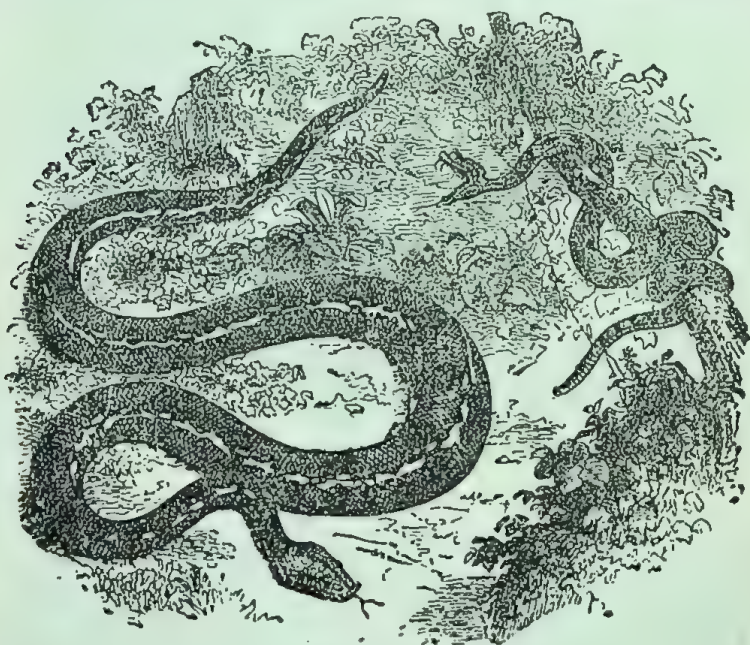
चित्र १५—कर्कर और बोआ

कर्करों के सिर का ऊपरी तल शल्य या कवचों से आच्छादित होता है किन्तु सिस्ट्रूरस प्रजाति में नव समरूप प्रकवचों से आच्छादित होता है। इन साँपों में झन-झन या कर-कर करने का साधन पूँछ की अँगूठियाँ होती हैं जो सींगदार त्वचा की सूखी फाँकें होती हैं और एक दूसरी में पिरोई होती हैं। बाधा पहुँचने पर यह उन्हें हिलाता है जिससे शब्द उत्पन्न होता है। उन अँगूठियों या फाँकों से कर्कर सर्प की आयु बताना बिलकुल भ्रामक है। उनके उत्पन्न होते रहने की कोई निश्चित अवधि नहीं होती। एक ही साल में यह

सर्प तीन चार वार पूँछ की त्वचा या केंचुल गिराता है और प्रत्येक बार एक फाँक या अँगूठी वन जाती है। इधर घिस-घिस कर फाँकें या पूँछ की अँगूठियाँ टूटती और गिरती भी रहती हैं। जन्म के समय कर्कर सर्प में इन फाँकों की जगह एक छोटा उभाड़-सा रहता है।
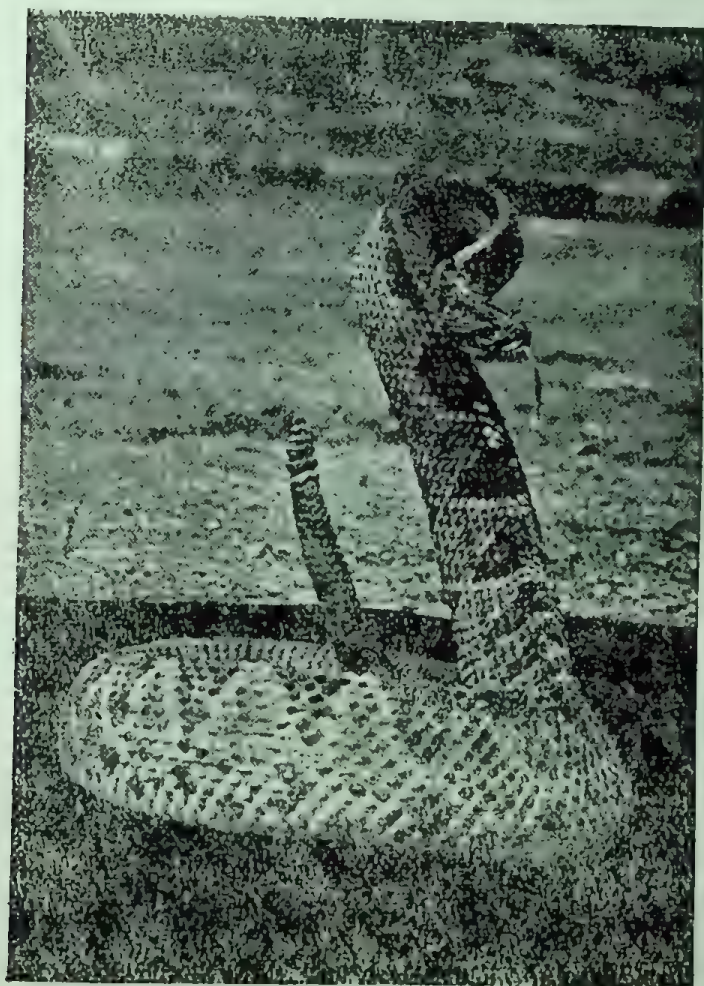
चित्र १६—उत्तेजित अवस्था में कोस्टारिका का झिनझिनिया सर्प

झिनझिनिया साँपों में उष्ण कटिबन्धीय झिनझिनिय सबसे

अधिक घातक समझा जाता है। इसके गर्दन की पट्टी लंबी होती है जो इसके बदन के रङ्ग से विभिन्न रूप की स्पष्ट जान पड़ती है। अन्य झिनझिनिया साँपों से इसे इस रूप के कारण पृथक पहचाना जा सकता है। इसके विष में विशेषतया स्नायविक विषाक्तता ही उत्पन्न करने की शक्ति होती है।
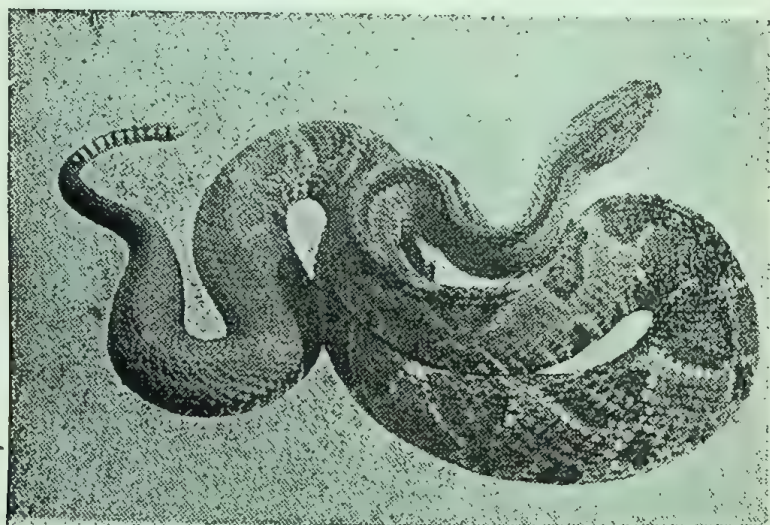
चित्र १७—उष्ण कटिबन्धीय झिनझिनिया

झिनझिनिया या कर्कर सर्प का प्रसार-क्षेत्र संयुक्त राज्य, दक्षिणी कनाडा, ब्रिटिश कोलंबिया ब्राजील और अर्जेन्टाइना है। इनमें क्रोटेलस प्रजाति के सर्प अधिकांशतः बड़े आकार के होते हैं। उनकी लम्बाई आठ फुट तक होती है। वे सूखे पहाड़ी भूभागों में रहते हैं और छोटे कृन्तकों को अपना आहार बनाते हैं।

सिस्ट्रूरस प्रजाति के कर्कर छोटे आकार के होते हैं। उनकी लंबाई दो फुट तक भी कदाचित ही होती हो। वे अर्द्ध जलमग्न स्थानों में दक्षिणी-पूर्वी संयुक्त राज्य में पाये जाते हैं। उनका आहार प्रायः मेढक ही होते हैं।

योरप और एशिया के घातक सर्प

योरप और एशिया के भूभाग संलग्न हैं। इनको मिलाकर यूरेशिया नाम दिया जाता है। यह इतना बड़ा भूखंड है कि पश्चिम ओर के अंतिम छोर के भूभाग का बिल्कुल पूर्व ओर के अंतिम छोर के भूभाग से जीव-जन्तु, वनस्पति आदि की दृष्टि से इतना अधिक वैषम्य दिखलाई पड़ सकता है मानो इनकी स्थिति बिल्कुल ही दो असंबद्ध क्षेत्रों में हो। विस्तृत क्षेत्र होने से ही इतनी विषमता पाई जाती है। इसी कारण दो पृथक महाद्वीप भी मान लिये गये हैं। हम यहाँ पर इस वृहद भूभाग के कुछ घातक सर्पों की चर्चा करेंगे।

योरप के घातक सर्प

योरप के घातक सर्प केवल क्षुद्र मण्डली सर्प हैं जो शुद्ध मंडली सर्प कहे जा सकते हैं। गर्त्त मण्डली (पिट वाइपर) योरप में नहीं पाये जाते। एशिया में भी दक्षिणी भाग में ही इनका प्रसार पाया जाता है। दक्षिण एशिया में तो चारों वंश के विषधर सर्प (एलापाइडी, हाइड्राफाइडी, क्रोटेलाइडी और वाइपेराइडी) पाये जाते हैं।

योरप में मण्डली सर्पों की सात जातियाँ मिलती हैं, किन्तु वे सब एक क्षेत्र में ही भरी नहीं पाई जातीं। यथार्थ में तो योरप का ऐसा कोई भी क्षेत्र नहीं जहाँ इनमें से तीन से अधिक जातियों के मण्डली सर्प पाये जा सकते हों। किन्तु बहुत से क्षेत्रों में तो दो ही

मंडली जातियों के सर्प मिल सकते हैं। कुछ भागों में केवल एक जाति ही पाई जाती है।

साधारण मंडली या ऐडर (वाइपर बेरस) को जर्मनी में क्रुजोटर नाम से पुकारते हैं। यह योरप का सबसे छोटे आकार का मंडली सर्प है। इसकी लम्बाई डेढ़ फुट से कदाचित ही अधिक होती हो। इसके बदन के रंग विभिन्न हो सकते हैं। खाकी, जैतूनी (पीलापन मिले भूरे) और भूरे रङ्ग से लेकर लाल-सा रङ्ग कभी-कभी पाया जाता है। उसके बदन का रंग इनमें से किसी का एक रस या सपाट-सा हो सकता है या उस पर चित्तियाँ या धब्बे भी हो सकते हैं। पीठ पर गहरे रङ्ग की टेढ़ी-मेढ़ी चित्रकारी से इसकी लम्बाई अधिक जान पड़ सकती है, जिससे यह निर्विष सर्पों से पृथक पहचाना जा सकता है किन्तु गहरे रंग के मंडली में यह विशेषता नहीं होती। कुछ मंडली सर्प तो पूर्णतः काले होते हैं। योरप के अधिकांश मंडली सर्पों में पीठ पर टेढ़े-मेढ़े (वक्रिय) धब्बे या पट्टियाँ पाई जाती हैं जिससे उनकी अलग-अलग जाति की पहचान बताना कठिन होता है। साधारण मंडली सर्प के सिर पर के पिछले भाग में धन (+) चिन्ह की तरह या स्वस्तिक आकार का चिन्ह होता है। इसकी पूँछ के नीचे पट्टिका की दो पंक्तियाँ होती हैं।

मंडली सर्प का निवास खुले जंगलों में ढाल, नदी नालों के धूप लगने वाले कगारों आदि में होता है। पत्थर के ढोकों की ढेरी या नष्टप्राय दीवाल के खंडहरों में ये आहार की खोज में पाये जा सकते हैं। ग्रीष्म के अंतिम भाग में खेत-खलिहान में कृन्तक जन्तुओं की भरमार होने पर ये भी उनको खाने की खोज में पहुँचते हैं। पहाड़ों में ५००० फुट की ऊँचाई तक मिलते हैं। शरद ऋतु में ये दीर्घ निद्रा में लिप्त होने के लिए विशेष अड्डों पर आ जमते हैं।

छोटा आकार होने से छोटे बिल में भी जाड़ा काट लेते हैं। पेड़ के ठूँठ में भी जाड़े का अड्डा हो सकता है।

दक्षिणावर्ती कगारों में भी जंगलों में ये जाड़ा बिताने का अड्डा बनाये होते हैं। वसंत के आगमन पर वे बहुसंख्यक रूप में जागृत होकर बाहर निकल कर दिखाई पड़ने लग जाते हैं। एक सर्प-विश्राम स्थल पर लगभग सौ मंडली सर्प तक पाये जा सकते हैं। वे झुंड रूप में रह कर कुंडली बाँधे पड़े मिल सकते हैं। वसंत ऋतु इनका सन्तानोत्पादन काल होता है। इसके बाद अड्डे से एक डेढ़ मील दूर की जगहों तक फैल जाते हैं। ग्रीष्म के अंत में एक दर्जन तक शिशु उत्पन्न होते हैं।

साधारण मंडली सर्प का प्रसार-क्षेत्र इंगलैंड, स्काटलैंड से लेकर ध्रुववृत्तीय क्षेत्र के अन्तर्गत नार्वे, स्वेडन, फिनलैंड और रूस तक पाया जाता है। इस मण्डली सर्प के काटने पर कभी-कभी मृत्यु भी हो जाती है। यह बड़े वेग और निर्दयता से काटता है। परन्तु काटने के पहले अपने रोष का प्रदर्शन कर लेता है। इसका आकार तो छोटा ही होता है, परन्तु फुफकार बड़ी ही तेज होती है। यह साँस लेते और निकालते, दोनों समय फुफकार छोड़ता है। और इस क्रिया में अपना बदन प्रचंड रूप में उठाता और गिराता है। इसके काटने पर सूजन हो आती है, पसीना खूब आने लगता है, उल्टी मालूम होती है। तुरन्त ही विषाक्त रक्त को निकाल फेंकना बचत का अच्छा उपाय होता है।

मंडली वंश को जन्तुशाला में पालने का प्रयत्न करने पर प्रति दस सर्पों में से नौ को खाना-पीना छोड़ कर मर जाते देखा जाता है। ये सर्प नम स्थान को तो अपना काल समझते हैं। तनिक भी

नमी होने पर उस जगह इसकी त्वचा भद्दी हो उठती है और उसमें बहुत से फोड़े उठ आते हैं। मण्डली सर्प की सब जातियों में यह दुर्बलता होती है। वे सदा सूखी जगहों में रहना पसंद करते हैं। कुछ तो मरु भूमि में रहते हैं।

दक्षिणी योरप में मध्य फ्रांस से लेकर दक्षिणी जर्मनी, स्विजरलैंड, इटली तक ऐस्प मण्डली नाम की जाति का साँप पाया जाता है। यह साधारण मण्डली से कुछ बड़ा होता है। थूथन कुछ नोकीला-सा होता है। कुछ थोड़ा-सा किनारे की ओर उठा रहता है। इस जाति के मण्डली साँप का रंग खाकी (भस्मीय), पीलापन-सा, भूरा या लाल हो सकता है जिस पर जोड़े रूप के गहरे रंग के धब्बे हो सकते हैं। कुछ सर्पों में ये धब्बे सटकर टेढ़ी-मेढ़ी लम्बी पट्टी-सी बना लेते हैं। कुछ बिल्कुल काले होते हैं। थूथन नोकीला और आगे की छोर पर उठा रहना ही इसका प्रधान लक्षण है।

एक मंडली सर्प की जाति "नासाश्टृङ्ग" (वाइपरा एम्मोडाइटस) नाम की होती है। इसके थूथन पर सींग-सी बनी होती हैं परन्तु नाम को ही उसे सींग कह सकते हैं। यथार्थ में वह कोमल ही होती है और उस पर नन्हें छिछड़े मढ़े होते हैं। इसका प्रसार दक्षिणी-पूर्वी योरप में है और पूर्व में टर्की और एशिया माइनर तक फैला पाया जाता है। एक दो फुट लम्बे नासाश्टृङ्ग मण्डली सर्प को पाँच इंच लम्बे गिरगिट को दो मिनटों के अन्दर जोर से दबोच कर दोनों जबड़ों की हड्डियाँ चला-चला कर निगल जाते देखा गया था। इस साँप के बदन की पृष्ठभूमि का रंग खाकी होता है। उसके ऊपर गहरे रंग की टेढ़ी-मेढ़ी लम्बी पट्टी बनी हुई पूँछ तक फैली होती है।

स्पेन पुर्तगाल और वहाँ से आगे भूमध्य सागर के पार मोरक्को और अल्जीरिया तक एक मण्डली सर्प की जाति पाई जाती है जिसे "अर्ध नासाश्रृङ्ग" (वाइपरा लेटेस्टाई) कहते हैं। इसमें और नासाश्रृङ्ग मंडली में यही अन्तर होता है कि इसके थूथन पर की सींग मामूली उभाड़-सी होती है जिस पर केवल एक छिछड़ा ही होता है।

दक्षिणी मध्य योरप में दक्षिणी-पूर्वी फ्रांस से लेकर उत्तरी इटली और हंगरी तथा एड्रियाटिक तक के भूभागों तक एक सर्प "शान्त मण्डली सर्प" (वाइपरा ओर्सिनाई) नाम का फैला पाया जाता है। योरप के किसी भी अन्य जाति के मण्डली सर्प की भाँति इस जाति के सर्प के विषदंत भी होते हैं और उसके साथ विष-थैलियाँ भी वैसी ही यथेष्ट विकसित होती हैं किन्तु यह इतना सज्जन होता है कि छेड़ने पर भी कदाचित ही कभी काटने का प्रयत्न करता हो। आस्ट्रेलिया में तो यह सर्प अधिक पाये जाने पर भी कभी घातक सिद्ध नहीं हुआ। वहाँ तो लड़के प्रायः इसे उठा कर चारों ओर लिये फिरते हैं। फिर भी नहीं काटता। इसी की एक दूसरी उपजाति पाई जाती है जिसकी आँखें बड़ो-बड़ी होती हैं। आहार की प्राप्ति के लिए अपने विषदंतों का प्रयोग इस उपजाति के मंडली सर्प करते हैं। यह टिड्डों को अपना आहार बनाता है। उनसे कभी-कभी इसका सारा पेट ठूसा मिल सकता है। किन्तु यह भी छूने पर मनुष्यों को नहीं काटता। इसका रूप काटने वाले सधारण मंडली सर्प से मिलता-जुलता है।

घातक प्रवाल सर्प—घातक या शुद्ध प्रवाल सर्पों की कई जातियाँ पाई जाती हैं। इनको मिक्रूरस प्रजाति का कहते हैं।

मिक्रूरस फ्रोन्टालिस—यह दक्षिणी ब्राजील से आर्जेन्टाइना
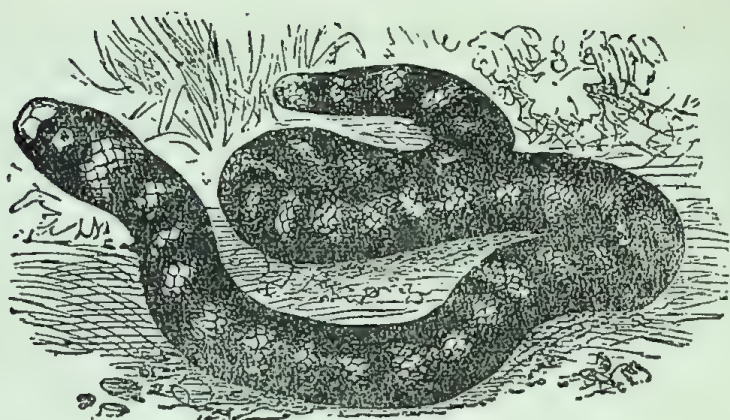
चित्र १८—प्रवाल सर्प

तक पाई जाती है। इसकी अँगूठीनुमा पट्टियों में सबसे चौड़ी गहरे लाल रंग की होती है। या यों कह सकते हैं कि यह लाल रंग का सर्प है जिसमें अन्य रंगों की अँगूठीनुमा पट्टियाँ होती हैं। इन चौड़ी लाल पट्टियों के भाग काले रंग की पट्टियों से पृथक हुए रहते हैं परन्तु इन काली पट्टियों के दोनों ओर किनारी की भाँति पीले रंग की पट्टियाँ होती हैं। बहुत ध्यान से देखने पर इन पीली पट्टियों में भी किनारी की तरह काली बहुत पतली पट्टियाँ होती हैं।

एशिया के घातक विषधर सर्प

एशिया के घातक मण्डलो सर्पों का जन्मस्थल अफ्रीका है। वहाँ से ये उत्तर की ओर योरप में फैले हैं और योरप उनके जन्मस्थान का ही उत्तरी विस्तार या उत्तरी उपनिवेश कहा जा सकता हैं। योरप में ही उनके वृहत्तम और विभिन्न सदस्य पाये जाते हैं। पूर्व की ओर एशिया में इनका थोड़ा ही प्रसार पाया जाता है। योरप में पाई जाने वाली मण्डली जातियाँ इधर ही समाप्त हो जाती हैं और उनके स्थान पर कुछ थोड़ी-सी अन्य मण्डली जातियों का प्रसार एशिया में पाया जाता है। ईरान में एक बालुका मण्डली

सर्प पाया जाता है जो एक गज लम्बा ही होता है। इसका वैज्ञानिक नाम "स्यूडोसेरास्टीज पर्सिकस" है। दक्षिणी-पश्चिमी एशिया में एचिस नाम की छोटी प्रजाति के मण्डली सर्प होते हैं जिसमें दो ही जातियाँ होती हैं किन्तु इनका प्रसार दूर तक अरब और अफ्रीका में भूमध्य रेखा के उत्तर के भूभागों में पाया जाता है।

एशिया के दक्षिणी-पूर्वी भाग में भारत, बर्मा, मलाया और पूर्वी द्वीपसमूह आदि में दबोइया (टिक पोलंगा) या रसे मण्डली सर्प का प्रसार है जो बड़े आकार का और घातक सर्प है। इसे "वाइपरा रसेलाई" कहते हैं। ऊपरी बर्मा की पहाड़ियों में एक छोटी जाति का मण्डली पाया जाता है जिसे "एजेमियोटस फीई" कहते हैं। इस तरह गिने-चुने मण्डली सर्प की जातियाँ ही इधर हैं। दबोइया का प्रसार भारत, सीलोन, बर्मा, थाईलैंड, सुमात्रा, जावा और अन्य पूर्वी द्वीपसमूहों तक है।

एशिया में मण्डली वंश के ये ही सर्प विद्यमान हैं किन्तु दूसरे घातक सर्पों के वंशों की भी जातियों के नमूने इन क्षेत्रों में पाये जाते हैं। इनका व्यापक क्षेत्रों में बहुसंख्यक प्रसार पाया जाता है।

एशिया में मण्डली वंश के अतिरिक्त एलापाइडी घातक सर्प-वंश नाग, करैत और अन्य संबन्धी घातक सर्पों की जातियों के लिए प्रसिद्ध हैं। हाइड्रोफाइडी वंश में समुद्री घातक सर्प होता है जिसकी पूँछ खड़े रूप में चपटी होती है और पतवार-सा काम करती है। क्रोटेलाइडी या गर्त्त मण्डली वंश गर्त्त मण्डली सर्पों के लिए प्रसिद्ध है।

एलापाइडी वंश की जातियों के नमूने एशिया में यथेष्ट पाये जाते हैं। यहाँ ही इनके सबसे बड़े रूप पाये जाते हैं किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि यहीं इनका जन्म और विकास हुआ होगा।

इनका जन्म और विकास-क्षेत्र अफ्रीका का ही बिल्कुल दक्षिणी छोर से उत्तरी छोर तक का विशाल भूभाग है। वहाँ उनकी विभिन्न जातियों के नमूने हैं जिनमें नाग की एक दर्जन जातियों और भयानक घातक सर्प मोम्बाज का नाम लिया जा सकता है। हाँ, सबसे अधिक विभिन्न रूपों के लिए आस्ट्रेलिया प्रसिद्ध है।

सर्प जगत का सम्राट नागराज है जो किंग कोबरा कहलाता है "नैया हन्ना" इसका वैज्ञानिक नाम है। इसकी विषथैलियाँ तो बहुत

चित्र १६—नागराज (किंग कोबरा)

भारी मात्रा में विष स्रवित करती हैं और यह सबसे वृहद् आकार का घातक सर्प है परन्तु इसे साँपों में ही नहीं, प्रत्युत आज के समस्त जीवित जन्तुओं में सबसे अधिक घातक जंतु कहना चाहिए। यह

अत्यन्त चपल और क्रोधी स्वभाव का होता है किन्तु इसमें बुद्धि भी पाई जाती है जो इसकी भयानकता बढ़ा देती है।

नागराज का प्रसार बर्मा, मलाया प्रायद्वीप, दक्षिणी चीन, पूर्वी द्वीपसमूह के द्वीप और फिलीपाइन तक है। इसके बदन का रंग जैतूनी या पीलापन मिला भूरा होता है। उसपर प्रायः अँगूठीनुमा आड़े रूप की काली पट्टियाँ होती हैं। जंतुशाला में नागराज की बुद्धि परखने का अवसर मिल सका है। नये आगंतुक नागराज सर्प को दर्शक के लिए कठघरे में सामने लगे काँच की दीवाल पर दो एक दिन फण मारते देखा गया है, परन्तु बाद में वह चतुर हो जाता है और काँच की दीवाल पर फण की मार करना निरर्थक समझने लगता है। ये सर्प अपने सेवकों को पहचानते से हैं और उनके सामने शान्त रूप प्रदर्शित करते हैं परन्तु दर्शकों के सम्मुख उनका रौद्र रूप ही होता है। प्रति सप्ताह आहार का समय आने पर वे कठघरे की पिछली खिड़कियों या छेदों से सेवकों के आहार लाने की उत्सुकता से प्रतीक्षा करने के लिए समय पर बेचैन हो पड़ते हैं।

छोटे कोबरा की तरह किंग कोबरा (नागराज) अपना फण फैलाने में समर्थ नहीं होता। उसमें आगे की पसलियाँ लम्बोतरी तो होती हैं, परन्तु छोटे नाग की तरह तुलनात्मक रूप में यथेष्ट चौड़ाई तक अपना फण नहीं फैला सकता। यह छोटे नाग की तरह अकस्मात वेगपूर्वक फण उठाता भी नहीं दिखाई पड़ता। यह कभी-कभी चार फुट तक फण उठा सकता है किन्तु सिर को स्थिर किये ही पड़ा रहता है। आँख की टकटकी लगाए दिखाई पड़ सकता है। सिर को छोटे नाग की तरह इधर-उधर हिलाने की प्रवृत्ति इसमें नहीं होती।

नागराज के काटने से हाथी के मर जाने का उदाहरण पाया

जाता है। इनका आहार केवल सर्प ही है। हाथी का चमड़ा तो बड़ा कड़ा होता है परन्तु सूंड के सिरे और पैर में नख की संधि के पास नर्म चमड़ा होता है। वहाँ पर नागराज के काटने से विष तुरन्त प्रभाव करने लगता है और तीन घन्टे में हाथी की मृत्यु हो सकती है।

नाग को भारतीय नाग या भारतीय कोबरा नाम से प्रसिद्ध किया गया है, परन्तु यह बड़े विस्तृत क्षेत्र में प्रसारित है। कास्पियन सागर के पूर्वी किनारे से लेकर सारे दक्षिणी एशिया में चीन तक यह पाया जाता है। पूर्वी द्वीपसमूह और फिलीपाइन में भी प्रसारित है। बदन के रंग और चित्रणों के भेद से इसकी कई उपजातियाँ पाई जाती हैं। आकार भी किसी का पतला और किसी का मझोले रूप का पुष्ट होता है। इनके मिले-जुले रूप भी होते हैं। फिलीपाइन के नाग का रंग गहरा भूरा या काला होता है। इसके फण पर कोई चिन्ह बना नहीं पाया जाता। किसी-किसी फिलीपाइन नाग में तीर की नोक समान धुँधला धब्बा बना पाया जाता है।

साधारण या एशियाई नाग के बड़े नमूने के साँप की लंबाई छः फुट तक पाई जाती है। उसका रंग पीलापन से लेकर गहरे भूरे तक होती है। इसके फण फैले होने पर एक काले और सफेद रंग का धब्बा चश्मा-सा बना दिखाई पड़ता है और फण के निम्नतल पर दोनों ओर दो छोटे-छोटे काले सफेद धब्बे बने होते हैं। ऐसे रूप का नाग अधिकतर दक्षिणी भारत और सीलोन में पाया जाता है। भारत में ऐसे नमूने के भी नाग पाये जाते हैं जिनके फण पर कोई चिन्ह नहीं बना होता। एक धब्बे का भी एक भारतीय नाग होता है जिनमें फण पर एक काले रंग की अँगूठी बनी होती है जिसके अन्दर

हल्के रंग का क्षेत्र होता है। उसके भी बीच एक काला दाग होता है। यह अधिकतर उत्तरी भारत और चीन में पाया जाता है।

नाग उत्तेजित हो उठने वाला सर्प है। छेड़े जाने पर तुरन्त ही फण फैला कर सिर उठा लेता है और गर्दन को मेहराबनुमा बना लेता है। यह क्रोध उत्पन्न करने वाले पदार्थ पर बार-बार सिर को आगे की ओर झपट कर नीचे की ओर जोर की फुफकार के साथ दे मारता है किन्तु इस तरह के आघात में मंडली सर्प नाग की अपेक्षा बहुत अधिक फुर्ती दिखलाता है। वह आड़े रूप में गर्दन का मेहराब बना कर विद्युत वेग से प्रहार कर बैठता है। नाग के आघात करने में उतनी चपलता न होने पर शिकार को मुँह से जकड़ रखने की प्रवृत्ति होती है। यह विषग्रंथि के ऊपर की पेशियों को सिकोड़ कर बहुत अधिक स्नायुघातक विष स्रवित करता है। जितनी देर में नाग विष के फैलाने के लिए फन उठाने और चोट करने की तैयारी करता है उतनी देर में चपल व्यक्ति हल्के डंडे से उसे दूर रख सकने में समर्थ हो सकता है।

नेवले और नाग के युद्ध का वर्णन सुनने को मिलता है। उसमें प्रायः नाग ही पराभूत होता है। नाग के विष का नेवले पर प्रभाव हो सकता है। उस विष के प्रभाव से बचने की शक्ति नेवले में नहीं होती। इसलिए कभी संयोग से नाग उसे काट ले तो मृत्यु अनिवार्य ही है। परन्तु नेवला केवल अपनी चपलता से ही नाग पर विजय पाता है। यदि नाग अपनी वक्रित गति से भूमि पर दौड़ कर नेवले पर आक्रमण करे तो उसके दौड़ने के वेग से नेवला पार नहीं पा सकता परन्तु नाग तो सदा रक्षा की मुद्रा बना कर ही आक्रमण करने का प्रयास करता है। वह अपने फण को उठा कर नेवले को निशाना बना कर ज्यों ही मार करता है नेवला द्रुत गति से फन की चोट बचा

कर उछाल मार लेता है और नाग के पीछे पहुँच जाया करता है। इस तरह बार-बार निष्फल आक्रमण का प्रयत्न करा कर नेवला नाग को थका मारता है। फिर किसी सुरक्षित दिशा से नाग की पूँछ नोच कर पीछे भाग जाता है। युद्ध करते-करते नाग की आँखें चौंधिया गई होती हैं। वह नेवले पर आक्रमण करने का उपक्रम-सा करता है परन्तु नेवला सामने नहीं होता; वह पीछे से उसकी गर्दन पर उसी समय आ धमकता है और अपने दाँत चुभो देता है। नेवले की सतत चपलता और तेज दाँतों के आघात से नाग के गर्दन की कशेरुकाएँ टूट जाती हैं।

नाग के विषदंत से आक्रान्त मनुष्यों की रक्षा के लिए सिरम का टीका शीघ्र लगाने से तुरन्त लाभ होता है। हाफकिन इंस्टिट्यूट और पास्च्युर इस्टिट्यूट यह सिरम तैयार कर वितरित करते हैं। इसका टीका अविलम्ब लगाने से मृत्यु नहीं होती किन्तु नाग के विष का बहुत अधिक प्रभाव हो चुकने के बाद सिरम का टीका लाभ नहीं दिखा सकता।

विष के प्रभाव से मनुष्यों का प्राणान्त करने में केवल नाग ही प्रमुख नहीं, प्रत्युत करैत, दबोइया तथा अन्य विषधर सर्पों का भी हाथ है। इन सब में दबोइया ही सबसे अधिक मनुष्यों का प्राणान्त करता है।

करैत साँप रात्रिचारी होते हैं। रात को अकसर पैर से दब जाने पर ये विषदन्त से आक्रमण कर घातक सिद्ध होते हैं। इनका प्रसार भारत, बर्मा, दक्षिणी चीन और पूर्वी द्वीप-समूहों में है। बस्तियों के निकट इनका प्रसार नाग से अधिक पाया जाता है। इनकी लम्बाई चार-पाँच फुट होती है। छिछड़े चिकने और चमकीले होते हैं। उनका रङ्ग गहरा भूरा या काला होता है और हल्के रंग

को आड़ी पट्टियाँ होती हैं। कुछ में तो पीली अँगूठियाँ स्पष्ट चित्रित होती हैं। इनकी पीठ पर कुछ उभाड़-सा होता है जिस पर बड़े शल्कों की एक पंक्ति होती है। सिर छोटा होता है और गर्दन से स्पष्ट नहीं होता। इनका आहार छोटे साँप, छोटे स्तनपायी, मेढक और सरट आदि हैं।

साधारण करैत का प्रसार भारत के मैदानी भाग से लेकर मलाया द्वीपसमूह तक है। पट्टित या मुद्रिकांकित करैत भी इसी क्षेत्र में पाया जाता है।

कुछ अन्य विषधर सर्प की जातियाँ भी एलापाइडी या नाग वंश में पाई जाती हैं। वे छोटे आकार के विषधर सर्पों की जातियाँ हैं। उनकी लम्बाई डेढ़ से दो फुट तक होती है। वे कृशकाय और छिपी रहने वाली होती हैं। उनमें काटने की प्रवृत्ति नहीं होती, इस कारण विषधर सर्पों में उनका नाम विशेष प्रसिद्ध नहीं है। इनमें ही डोलियोफिस प्रजाति के सर्प भी होते हैं। इसकी चार जातियाँ होती हैं जो बर्मा, हिन्द चीन और पूर्वी द्वीपसमूह में पाई जाती है। इनके शरीर के भीतर एक विचित्र रचना होती है। इनकी विष-थैली कपोल क्षेत्र में ही सीमित रहने के स्थान पर पीछे की ओर पूरे बदन के एक तिहाई भाग तक नाली रूप में फैली रहती है। अंत में गदा की भाँति फैला सिरा होता है किन्तु ये मनुष्य के लिए भयानक नहीं होते। अपने शिकार पर ही हमला करने में विष का प्रयोग करते हैं।

समुद्री विषधर सर्प-वंश जलनाग-वंश की केवल एक जाति ही नई दुनिया के समुद्रों में पाई जाती है। परन्तु एशिया में तो इसकी पचासों जातियाँ उष्ण कटिबंधीय समुद्रों में हैं। इनको नाग और करैत सर्पों का ही जलचारी रूप कह सकते हैं। इसलिए इसके वंश का नाम भी जलनाग वंश रक्खा जा सकता है। जलनागों का

अधिक प्रसार फारस की खाड़ी से लेकर पश्चिमी उष्ण-कटिबंधीय पैसिफिक सागर तक दक्षिणी एशिया तथा पूर्वी द्वीपसमूहों के समुद्रों में है। तट से एक हजार मील दूर तक इन्हें पाया जा सकता है। ये सूखे भाग और पानी के अंदर भी अधिक समय तक रह सकते हैं।

बंगाल की खाड़ी और भारत महासागर में जलनाग भरे पड़े हैं। उनके विभिन्न रंग-रूप पाये जाते हैं। कुछ में भव्य रंग की अँगूठीनुमा पट्टियाँ होती हैं। हाइड्रोफिस प्रजाति के जलनागों की बहुत-सी जातियाँ होती हैं। इनमें से कुछ साँपों की लम्बाई आठ से दस फुट तक होती है। उनकी बड़ी लंबोतरी गर्दन होती है और भारी बदन की तुलना में छोटा सिर होता है। कई जलनागों में बदन का व्यास सिर के व्यास से चौगुना या छः गुना अधिक होता है। यह बड़ा ही विचित्र रूप दिखाई पड़ सकता है। औसत रूप से जल-नागों की लम्बाई चार या पाँच फुट कहना चाहिए। ये अंडे न देकर सदेह शिशु ही उत्पन्न करते हैं। शिशु उत्पन्न करने के पूर्व ये सुनसान समुद्र-तट के समीप के उथले जलखण्ड या ज्वार-भाटा से बने जला-शयों में चले जाते हैं।

चीतल समुद्री नाग—यह जलनाग मलाया के पास के समुद्रों में पाया जाता है। यह भयानक विषधर होता है। इसका बदन खड़े रूप में चपटा होता है जिससे यह अन्य सब जल-सर्पों से अधिक तेजी से तैर सकता है। इसका रंग पीठ पर जैतूनी हरा होता है। नीचे नारंगी रंग बन गया होता है। पीठ पर अनेक काली पट्टियाँ होती हैं। यह छः फुट से अधिक लंबा नहीं होता। यह पानी के अंदर ही रहकर शिकार ढूंढ़ता है परन्तु पानी के अंदर से यह अपने विष का प्रभाव डालने में असमर्थ जान पड़ता है।

मंडली या वाइपराइडी वंश की जातियाँ तो एशिया में थोड़ी
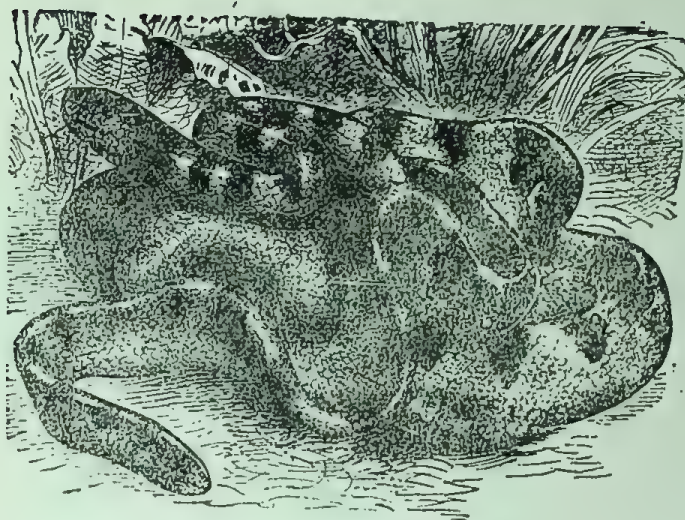
चित्र २०—चीतल समुद्री सर्प

ही हैं किन्तु दबोइया इसका प्रमुख प्रतिनिधि है। इसका प्रसार भारत, सीलोन, चीन, मलाया प्रायद्वीप, जावा, सुमात्रा, बोर्नियो आदि तक है। ऊपरी बर्मा में एक छोटा मण्डली सर्प पाया जाता है।

चित्र २१—दबोइया

दबोइया की लम्बाई लगभग पाँच फुट तक होती है। यह नाग से भी अधिक घातक सर्प है। परन्तु रंग-रूप बड़ा ही आकर्षक होता है, बदन का रंग धुँधला पीला होता है और पूरी लम्बाई में बड़ी काली अँगूठियों की तीन पंक्तियाँ फैली होती हैं जिनमें सफेद या पीली किनारी होती है और बीच में गहरा भूरा या लाल धब्बा होता है। कुछ सर्पों में अँगूठियों को सटे रख कर जंजीर बनाते पाया जाता है।

दबोइया भयानक सर्प है। इसकी फुफकार बड़ी डरावनी होती है जिसे पचीस फुट की दूरी से सुना जा सकता है, यह बड़ी जल्दी-जल्दी फुफकार छोड़ता रहता है। काटने में वह इतनी फुर्ती दिखलाता है कि एक फुट तक झपटता है मानो उछल रहा हो।

दबोइया की संख्या अधिक होने का यह कारण है कि यह एक बार में दो दर्जन तक शिशु उत्पन्न करता है। वे शीघ्र ही दूर चले जाते हैं। दबोइया का आहार कृन्तक (चूहे आदि) जंतु हैं इसलिए रात को उनकी खोज में यह बस्ती के अंदर आ जाता है।

भारत का मण्डली (दबोइया) सर्प चार-पाँच फुट लम्बा होता है। यह मलाया और उसके निकट के प्रदेशों में भी पाया जाता है। कोबरा और करैत सर्पों के अतिरिक्त यह हमारे देश का घातक सर्प है जिससे बहुत से मनुष्यों और जन्तुओं का प्राणान्त होता है।

गर्त्त मण्डली वंश (क्रोटेलाइडी) के लिए एशिया को भंडार ही कहा जा सकता है। एशिया में इस वंश के झिनझिनिया (कर्कर) सर्प नहीं पाये जाते, उनका प्रसार केवल नई दुनिया में ही है किंतु मोका-सिन या एंगक्रिस्ट्रोडोन प्रजाति के सर्प कई जातियों के पाये जाते हैं। इनमें सिर पर सुडौल पट्टिकाएँ होती हैं। इनकी लम्बाई दो से पाँच फुट तक होती है। किन्तु कुछ प्रौढ़ सर्प एक गज से भी लंबे

होते हैं। इनके ही अनुरूप सर्प योरप में ताम्रशीर्ष (कापर हेड) नाम के पाये जाते हैं।

मोकासिन सर्पों की कई जातियों के विशेष प्रसार-क्षेत्र हैं। एक जाति चीन में यांग्सी नदी के ऊपरी भाग में पाई जाती है। एक दूसरी जाति का प्रसार कास्पियन तट और यूराल नदी से लेकर यनीसी नदी के ऊपरी भाग तक है। तीसरी जाति का प्रसार मध्य एशिया और पूर्वी साइबेरिया, मंगोलिया और जापान में है। एक चौथी जाति का प्रसार पूर्वी साइबेरिया, मंगोलिया, चीन, जापान और थाई लैंड तक है। हिमालयेनस नाम की जाति पाँच हजार से दस हजार फुट तक और खासी पहाड़ियों तक है। एक छठी जाति का प्रसार थाईलैंड, मलाया प्रायद्वीप, सुमात्रा और जावा तक है। हिपनेल नाम की सातवीं जाति का प्रसार सीलोन और भारत में पश्चिमी घाट में बम्बई तक है।

ट्रिमरेस्यूरस प्रजाति के गर्त्त मण्डली सर्प एशिया में ही पाये जाते हैं। इनका सिर सदा चौड़ा होता है और गर्दन से स्पष्ट मालूम पड़ता है। अधिकांश जातियाँ एक गज लम्बी होती हैं। बदन का आकार किसी में पतला और किसी जातियों में मझोले रूप का होता है। ये दलदली स्थानों से लेकर वृक्षों तक रहने वाले होते हैं। भूचारी जातियों में पूँछ में कुंडलीपाश की शक्ति नहीं पायी जाती। किन्तु वृक्षचारी जातियों में पूँछ में कुंडली-पाशवद्धता की शक्ति पाई जाती है। इन जातियों के साँपों का सिर अपेक्षाकृत चौड़ा होता है और बदन पतला होता है। भूचारी जातियों का रंग भूरा या खाकी होता है जिस पर गहरे रंग के धब्बे बने होते हैं। अधिकांश वृक्षचारी जातियाँ हरे रंग की होती हैं जिस पर कुछ में यथेष्ट स्पष्ट चित्रण

होते हैं किन्तु अन्य जातियों में पत्ती का ही रंग होता है जिससे उनको पहचानना कठिन होता है।

गर्त्ता मंडलो के इस प्रजाति की नौ जातियाँ भारत में पाई जाती हैं। इनके सिर पर छोटे शल्क होते हैं जिससे इन्हें मोकासिन सर्पों से पृथक पहचाना जा सकता है। इस प्रजाति के सर्प दक्षिणी एशिया और फिलीपाइन द्वीप तक फैले हैं। फिलीपाइन में तो इसकी सबसे अधिक जातियाँ होती हैं। हरित वृक्षचारी गर्त्ता मण्डली का बहुत अधिक प्रसार भारत और पूर्वी द्वीपसमूह में है। इस का रंग हरा होता है और दोनों ओर धुँधली पीली पट्टी होती है। यह एक गज लम्बा होता है।

आस्ट्रेलिया के घातक सर्प

आस्ट्रेलिया विचित्र जंतुओं के लिए प्रसिद्ध है, वहाँ पर शिशु-धान वर्ग के जंतुओं की जितनी बहुलता और विविधता विद्यमान है उतनी संसार में अन्यत्र कहीं नहीं पाई जाती। कंगारू इस वर्ग का बहुत प्रसिद्ध नमूना है जो शिशु को अपने उदर की बाह्य थैली में बहुत दिनों तक पालकर बड़ा करता है। इन जन्तुओं को अधूरे रूप का स्तनपोषी जन्तु कहते हैं। अंडज से पिंडज या स्तनपोषी जन्तुओं का विकास होने के पूर्व ये मध्यवर्गीय जंतु विकसित हुए होंगे। संसार के अन्य भागों में भी इनका कभी निवास रहा होगा जहाँ से अन्य पश्चात्वर्ती अधिक विकसित स्तनपोषी जन्तुओं ने इनको जीवन-संघर्ष में पीछे ढकेल कर लुप्त कर दिया होगा; परन्तु आस्ट्रेलिया के अन्य भूभागों से पृथक पड़े रहने का अवसर चिरकाल तक रहने से कदाचित शिशुधान जन्तुओं को पराभूत या लुप्त करने वाले अधिक बलिष्ठ कार्यकुशल, बुद्धिशाली स्तनपोषी जंतु प्रचुर संख्या में विद्यमान न हो सके।

शिशुधान जन्तु शिशु को गर्भस्थल में अधिक विकसित कर बाह्य जगत में उनको अवतरित करने के स्थान पर बहुत क्षुद्रकाय, दुर्बल ही शिशु जनन करते हैं जो अंडजों के संतानोत्पादन विधान से एक पग आगे की बात होती है। परन्तु क्षुद्र शिशुओं को उदर या शरीर के किसी भाग की थैलो में रखकर पालने की व्यवस्था करनी पड़ती है। इस कारण आस्ट्रेलिया को सृष्टि का कुछ पिछड़ा

भाग कहें तो अत्युक्ति नहीं हो सकती । किन्तु इन शिशुधान जंतुओं ने अन्य स्तनपोषियों का अन्यत्र अवतरण होने की घटना से अपने को प्रभावहीन न रहने दिया । उनका किसी प्रकार ऐसे जन्तुओं से कभी सम्पर्क होने का अवसर कदाचित रहता आया हो । उसी के फलस्वरूप हम स्तनपोषी जन्तुओं के ही नमूनों के जन्तु शिशुधानों में विकसित देखते हैं । कुछ भी हो । स्तनपोषी जन्तुओं के अधिक प्रकारों के नमूने आस्ट्रेलिया में नहीं पाये जाते । बहुत सीमित प्रकारों का ही कालान्तर में फैलाव हुआ ।

स्तनपोषी जन्तुओं के सीमित प्रकारों का ही प्रसार हमें आस्ट्रेलिया में देखने को मिलता है । उसी तरह सर्प जगत की भी वहाँ दशा है । वहाँ सर्पों की न्यूनता तो नहीं है, जातियाँ भी अनेक हैं और सर्पों की संख्या भी बहुत है । परन्तु विविध वंशों की विद्यमानता नहीं पाई जाती । केवल नाग वंश (एलपाइडी) की ही जातियाँ बहुसंख्यक नमूनों के साथ पाई जाती हैं । एक आश्चर्य की बात यह भी है कि आस्ट्रेलिया में जो भी सर्प हैं, उनमें अधिकांश घातक ही हैं । ऐसा अन्यत्र किसी भी भूभाग में नहीं पाया जाता । इस वंश की भी विविधरूपता विकसित नहीं पाई जाती । यदि अन्य वंशों के अनुकरण स्वरूप इस वंश की जातियाँ भी शाखा-प्रशाखा वंशों में विकसित हो सकी होतीं तो वृक्षचारी, जलचारी, कुंडलीपाशबंधक, विवरखनक और मोटे पतले नमूनों के सर्प विकसित हुए होते किन्तु एक दो अपवाद छोड़ कर ऐसी स्थिति नहीं हो पायी है । अपवाद स्वरूप सर्प की जाति काल सर्प (डेथ ऐडर) है जो नाग वंश का होने पर भी मंडली सर्प का रूप धारण करता है अन्यथा आस्ट्रेलिया भर में मण्डली वंश के किसी भी जाति के सर्प का सर्वथा अभाव ही है । यह स्नायुध्वंसक विष उत्पन्न करने वाले

नाग वंश की ही जाति हैं। परन्तु इसके विषदन्त असमानुपाती रूप में वृद्धि प्राप्त किये होते हैं। आस्ट्रेलिया के नागवंशी सर्पों में बहुत-सी जातियों के सर्प मनुष्य के लिए घातक सिद्ध नहीं होते। छोटे विषदन्त होने से या तो उनके विष का घातक प्रभाव नहीं हो पाता, या वे स्वयं भय से छिपते फिरते हैं। बड़े आकार के सर्पों की जातियाँ घातक होती हैं। उनमें काटने की भी प्रवृत्ति और धृष्ठता होती है। संसार के अन्य भूभागों के नागवंशी सर्पों में स्नायुध्वंसक विष ही होता है, परन्तु आस्ट्रेलिया के बड़े नागों में इस विष के साथ मंडली सर्पों की तरह कुछ रक्तध्वंसक विष का भी प्रभाव होता है। इस कारण ये अधिक भयानक होते हैं। कुछ नाग सर्पों की जातियों के वर्णन यहाँ दिये गए हैं।

काला साँप (स्युडेचिज पोटफिरिएकस)—यह यथेष्ट बड़ा और सुन्दर सर्प है। आस्ट्रेलिया के बड़े और घातक नागों में इसकी संख्या सबसे अधिक पाई जाती है। उत्तर के भाग को छोड़ कर शेष भाग में इसका दूर-दूर तक प्रसार है। यह आर्द्र, दलदली भूमि पसंद करता है। पानी में भी प्रविष्ट होकर तैर सकता है। इसकी लम्बाई पाँच फुट होती है। इसके बदन की सुडौल रचना होती है। गर्दन की पसली कुछ लम्बोतरी होने से यह तीन चार इंच तक के भाग को कुछ फन की तरह फैलाने का उपक्रम कर सकता है। इसका फन भारतीय नाग के फन के अनुपात से आधा ही फैल पाता होगा। किन्तु यह फन सीधे ऊपर नहीं उठाता। कुछ तिरछे रूप में उसे भूमि से कुछ ऊपर ऊंचा कर सकता है। इसके शल्क चिकने होते हैं और बदन के ऊपरी तल का रंग भद्दा नीला काला होता है। बदन का पार्श्व भाग चमकीला रक्त वर्ण होता है जिस पर प्रायः पतली काली किनारी होती है। उदर का रंग भी वैसा ही होता है,

आड़ी पट्टिकाओं की किनारी नीली लाल मिली काली होती है। बड़ा आकार होने पर भी काले सर्प का काटना उतना भयानक नहीं होता जितना उससे बड़े आकार के अन्य नागों का। यह दो दर्जन तक सदेह शिशु उत्पन्न करता है। यह आस्ट्रेलिया के एक नाग को विशेषता है। अन्य भूभागों के नाग तो प्रायः अंडे ही देते हैं।

काले साँप की प्रजाति के ही अन्दर एक दीर्घकाय जाति के नाग होते हैं जिनकी लम्बाई नौ फुट तक होती है। इन्हें भीम नाग कह सकते हैं। इनके विषदंत और विषथैलियों का आकार समानुपाततः बड़ा होता है। यह जाति क्वींसलैंड में पाई जाती है।

आस्ट्रेलिया का सबसे बड़े आकार का सर्प भीम वभ्रु नाग (आक्सिरेनस मैक्लेन्तनी) हैं। इसकी लम्बाई दस फुट तक होती है। इसके विषदन्त आधा इंच लम्बे होते हैं। इसे नाग राज का छोटा बंधु ही कह सकते हैं। यह केपयार्क पेनिनसुला में पाया जाता है।

ताम्रशीर्ष नागं (डेनिसोनिया सुपर्वा) टस्मानिया में पाया जाता है। यह पाँच फुट लम्बा होता है। भूरा से लेकर काला तक रंग हो सकता है। सिर का रंग ताँबे-सा होता है। यह सर्प काले सर्प से स्थूलकाय होता है। क्रुद्ध होने पर नाग की तरह गर्दन मोड़कर कुछ इंच ऊपर उठाता है। फन उठाना सीखने लगने पर कदाचित आरम्भ में नागों ने इतना ही सिर उठाना प्रारम्भ किया हो। इस सर्प की प्रजाति में दो दर्जन जातियाँ होती हैं। कई तो बहुत कृशकाय, कोड़ानुमा होती हैं और कई छोटे आकार की ही होती हैं जिनके काटने पर मधुमखी के डंक मारने-सा ही प्रभाव हो सकता है। इनमें एक कोड़ा सर्प डेढ़ फुट ही लम्बा होता है। दूसरा सवा फुठ ही लम्बा होता है।

डेमांसिया प्रजाति दूसरी होती है जिसमें एक दर्जन जातियों के नाग होते हैं। इसमें भी बहुत-सी जातियाँ कोड़ा सर्प कहलाती हैं। एक जाति का सर्प भूरा सर्प (डेमांसिया टेक्सटाइलिस) कहलाता है जो चार-पाँच फुट लम्बा होता है। यह अत्यन्त घातक माना जाता है। इसके बदन का ऊपरी तल हल्का भूरा और निम्न तल सफेद होता है। शिशु मटमैले भूरे रंग के होते हैं। उनके बदन पर एक वर्ष की आयु तक सुन्दर रंग की अँगूठियाँ बनी पाई जाती हैं। इस सर्प का सिर छोटा होने से काटने पर विष की मात्रा काटे हुए व्यक्ति के अंदर थोड़ी ही पहुँचती है किन्तु विष तीव्र होता है। यह साँप निर्विष सर्पों की तरह भोले-भाले आकार का दिखाई पड़ता है, परन्तु ध्यान से देखने पर इसके मुख पर घातक सर्प होने का लक्षण पाया जा सकता है। निर्विष सर्पों में नेत्र की किनारी बनाने वाली गोल बाढ़ या परकोटे और नासिका के परकोटे के मध्य एक वर्गाकार-सा उभाड़ होता है। किसी-किसी निर्विष सर्प में ही यह लुप्त पाया जा सकता है। किन्तु नाग (कोबरा), करैत, मम्बाज, प्रवाल सर्प या इनकी सम्बन्धित जातियों के सब सर्पों में वह वर्गाकार कवच नहीं पाया जाता। यह घातक सर्प होने का सूक्ष्म लक्षण है। यदि कुछ इने-गिने अपवादों को छोड़ दिया जाय तो आँख और नाक के मध्य में उस चौकोर-से कवच या उभाड़ का न होना ही सर्प में भयानक घातकता का लक्षण कहा जा सकता है।

व्याघ्र नाग (नोटेविस स्कुटेटस)—इस सर्प का नाम व्याघ्र नाग रखने का यह कारण है कि इसके बदन पर बाघ के चमड़े की तरह भूरे पीले रंग की पृष्ठभूमि के ऊपर गहरे रंग की पट्टियाँ बनी होती हैं। किन्तु अपवाद स्वरूप इसके बदन का रंग इतना गहरा भी पाया जाता है जिस पर पट्टियाँ अस्पष्ट हो गई हैं। इस नाग की

चित्र २२—व्याघ्र नाग

लम्बाई चार-पाँच फुट होती है और यह औसत रूप का मोटा होता है। यह यथेष्ट सूखे भागों में रहता है। इस कारण इसके अनेक रंग-रूप आस्ट्रेलिया के अतिरिक्त टस्मानिया में भी पाये जाते हैं।

यह सर्प बड़ी ही जल्दी कुपित हो जाने के कारण आस्ट्रेलिया के सबसे भयानक सर्पों में गिना जाता है। इसके विष के एक बूँद से योरप, एशिया या अफ्रीका के किसी भी घातक सर्प के विष की एक बूँद की अपेक्षा अधिक घातक शक्ति होती है। किन्तु कुशल यही है कि इसके काटने पर अपेक्षाकृत बहुत थोड़ा विष ही आक्रान्त जंतु के शरीर में पहुँच पाता है।

व्याघ्र नाग आस्ट्रेलिया के घातक सर्पों में सबसे भयानक और घातक हैं। इसके विष की परीक्षा करने पर ज्ञात होता है कि इतनी भयानकता अन्य सर्पों के विष में नहीं होती। कुशल यह है संसार के अन्य सभी प्रसिद्ध रूप के घातक सर्पों की अपेक्षा इसमें न्यून मात्रा में विष होता है। आस्ट्रेलिया के अन्य सब घातक सर्पों

के काटने से जितनी मृत्यु होती है उससे अधिक अकेले इस जाति के नाग के काटने से होती है। यह इतने तीव्र वेग से काटता है कि इसका बदन फिसल कर आगे जा पड़ता है। बदन के अगले भाग की पसलियाँ लम्बोतरी कर गर्दन फैला लेता है और तुरन्त चोट करता है। इसका रूप सुडौल कोड़ानुमा नहीं होता। सिर कुछ चौड़ा होता है। कपोल-स्थल फूला होता है जो विष-थैलियों से प्रबल विष स्रवित कर सकने का संकेत होता है। इसका आहार छोटे-छोटे स्तनपोषी और सरीसृप हैं। यह एक बार में पचास सदेह शिशु को उत्पन्न करता है।

नाग-पृदाकु या डेथ ऐडर (एकैंथोफिस अन्टार्किटस)—यह नाग-वंशी सर्प होकर भी मंडली वंशी सर्पों का रूप धारण करने वाला सर्प है। इसकी लम्बाई दो फुट के लगभग होती है। बदन छोटा और मोटा होता है। सिर चौड़ा होता है। सिर बड़ा होने से इसका विषदंत व्याघ्र नाग से बड़ा होता है। इस कारण यह अपने अतिशय घातक विष का प्रहार कर भयानक सिद्ध होता है। यह काटने में व्याघ्र नाग की तरह न तो रौद्र रूप धारण करता है और न उतनी चपलता प्रदर्शित करता है किन्तु पैर के नीचे दबने पर काल का ही सामना-सा होता है। इसके बदन का रंग स्थान-स्थान पर विद्यमान रेत के रंगों समान भूरा, खाकी, हल्का गुलाबी या लाल-सा हो सकता है जिससे यह वातावरण के अनुरूप शरीर होने से छिपा रह सके। बदन के ऊपर गहरे रंग की पट्टियाँ भी होती हैं। इसकी पूँछ पर एक शल्य होता है। बदन के अगले भाग के छिछड़े बहुत भद्दे तलों के होते हैं। सिर की ढाल पर के छिछड़े भी बड़े भद्दे तलों के होते हैं। यह एक बार में एक दर्जन तक जीवित (सदेह) शिशु उत्पन्न करता है। आस्ट्रेलिया के नागों में यह जाति ही सबसे अधिक

प्रसारित है। यह दक्षिणी विक्टोरिया छोड़ कर सारे आस्ट्रेलिया में पाई जाती है, न्यूगिनी और मलक्का द्वीप में भी प्रसारित है।

चित्र २३—पृथुल कालसर्प

यह आस्ट्रेलिया का सबसे अधिक घातक विषधर है। इसके विष में मात्रा की तुलना में उतनी घातकता नहीं होती जितनी आस्ट्रेलिया के दूसरे घातक विषधर सिंह सर्प (आस्ट्रेलिया टाइगर स्नेक) में होतो है परन्तु इसके विषदन्त का आकार बड़ा होने से काटने पर अधिक विष आक्रान्त जंतु के शरीर में प्रवेश कर जाता है। इसका बदन मोटा होता है।

आस्ट्रेलिया में नागवंशी सर्पों की लगभग अस्सी जातियाँ पाई जाती हैं जो चौदह प्रजातियों में विभाजित हैं। इनमें से छः प्रजातियों के सर्प न्यूगिनी में पाये जाते हैं किन्तु उनकी सभी जातियाँ वहीं नहीं होतीं बल्कि इन प्रजातियों की कुछ प्रतिनिधि जातियाँ वहाँ पर मिलती हैं। दो प्रजातियों के प्रतिनिधि सालमन द्वीप में मिलते हैं। दो प्रजातियों के नमूने टस्मानिया में पाये जाते हैं। कुछ प्रजातियाँ मलक्का द्वीप में भी पाई जातीं हैं।

तुलनात्मक दृष्टि से कुछ प्रसिद्ध घातक सर्पों से प्राप्त विष की मात्रा का उल्लेख आस्ट्रेलिया के घातक सर्पों से प्राप्त विष की मात्रा के साथ किया जा सकता है। प्रत्येक से प्राप्त विष मिलीग्राम में दिया है :—

उत्तरी अमेरिका का हीरक पृष्ठ कर्कर (क्रोटेलस ऐडमैटियस)	—६०० मि० ग्रा०
उत्तरी अमेरिका का ताम्रशीर्ष सर्प (एगकिस्ट्रोडोन मकासिन)	—५५ मि० ग्रा०
भारतीय नाग या कोबरा (नैया-नैया)	—३१७ मि० ग्रा०
भारत का दबोइया या रसेल वाइपर (वाइपेरा रसेलाई)	—१०८ मि० ग्रा०
आस्ट्रेलिया का नाग पृदाकु या (एकैंथोफिस ऐंटार्किटस)	—८४·७ मि० ग्रा०
आस्ट्रेलिया का व्याघ्र काल सर्प (नोटेचिस स्कुटेटस)	—४७·२ मि० ग्रा०
,, ,, ताम्रशीर्ष (उनिसंक्रिया सुपर्बा)	—३५·६ मि० ग्रा०
,, ,, काला नाग (स्युडेचिस पोरफिरिएकस)	—४७ मि० ग्रा०

अफ्रीका के घातक सर्प

अफ्रीका में अत्यधिक विचित्र-विचित्र रूपों के घातक सर्पों का भंडार है। दीर्घकाय चपल और अत्यन्त उत्तेजनाशील घातक सर्पों की दृष्टि से यह महादेश महत्वपूर्ण है। कुछ जातियाँ तो अत्यन्त दीर्घकाय विषदन्त और विष की भयानक तीव्रता के कारण प्रसिद्ध हैं और कुछ जातियाँ विचित्र व्यवहारों और रंग रूपों के ही कारण अति प्रसिद्ध हैं। वहाँ पर ही कुछ ऐसे रूप के नाग पाये जाते हैं जिनमें दर्शक की ठीक आँख में विष थूक देने की शक्ति और प्रवृत्ति पायी जाती है।

अफ्रीका में गर्त्त मंडली या गर्त्त पृदाकु (पिट वाइपर) नहीं होते किन्तु साधारण मंडली (वाइपर) सर्प और नागवंशी सर्प अतिशय अधिक पाये जाते हैं। आस्ट्रेलिया में तो नागवंशी सर्पों की बहुत ही अधिकता है। किन्तु उसे छोड़ दिया जाय तो शेष संसार का नागवंशी स्वर्ग अफ्रीका का ही कहा जा सकता है। अफ्रीका ही पृदाकु (मंडली) वंश के साधारण सर्पों का जनक प्रतीत होता है क्योंकि वहाँ वे विभिन्न रूपों में विद्यमान पाये जाते हैं। दीर्घकाय भूचारी मण्डली से लेकर मरुभूमि के ऊपर चल सकने वाले या रेत में धँस कर छिप सकने वाले मंडली सर्प तक पाये जाते हैं। कृशकाय लतावत हरित पृदाकु से लेकर दीर्घशीर्षीय वृक्षचारी पृदाकु सर्प तक वहाँ पाये जा सकते हैं। "एट्रेक्टेस्पिस" प्रजाति के पृदाकु तो अपने विषदंतों को इतना वृहदाकार बना सके हैं कि उनका व्यावहा-

रिक उपयोग भी कठिन ही कहा जा सकता है। एक पृदाकु अर्ध-जलचारी भी प्रतीत होता है। इस तरह बीसियों जाति के पृदाकु सर्पों का भण्डार ही वहाँ जुटा पड़ा है।

अफ्रीका के नाग

नागवंशी सर्पों में तो भयानक रूप की जातियाँ अफ्रीका में विद्यमान ही हैं, इस वंश की छोटी ज़ातियाँ भी पाई जाती हैं। इनमें प्रवाल सर्पों का आकार छोटा और कृशित होता है। शल्क चमकीले होते हैं। ये विवर बना कर भी रहते हैं या धरातल पर ही जीवन यापन करते हैं। बिना छेड़े या चोट पहुँचाए ये आक्रमण नहीं करते। ये दो फुट तक औसत रूप में लम्बे होते हैं। इसकी कई जातियाँ अनेक रंग रूपों की अफ्रीका में पायी जाती हैं। उष्ण कटिबन्धीय और दक्षिण अफ्रीका में इन सर्पों की एलापस्वायडिया प्रजाति की कई जातियाँ हैं। इनमें गुँथेरी नाम की जाति में प्रवालीय (हल्के गुलाबी) और श्वेत रंग की अँगूठीनुमा पट्टियाँ या मुद्रिकाएँ बनी होती हैं। एक जाति उसंबरा पर्वतों में काले रंग की पायी जाती है जिसमें श्वेत रंग की पतली मुद्रिकाएं खिंची होती हैं। इसे निग्रा जाति कहते हैं किन्तु इसकी मुद्रिकाएँ या अँगूठीनुमा पट्टियाँ चौड़ाई में बदन के चारों ओर नहीं फैली होतीं जिससे पूरी गोल अँगूठी नहीं बनी होती, बल्कि गोलाई का कुछ अधूरा भाग ही बना होता है इसलिए इसे पट्टियों वाला सर्प (पट्टित) कहना चाहिए। होमोरोसेलाप्स प्रजाति को दो जातियाँ दक्षिण अफ्रीका में पाई जाती हैं। ये एक फुट से लम्बी नहीं होतीं। इनके बदन का रंग पीला या पीला श्वेत होता है और हल्के रंग की मुद्रिका या उसकी शृङ्खला बनाने वाली लाल-सी या चमकीली नारंगी पट्टियाँ बनी होती हैं।

टांगानियका झील में जलचारी नाग पृथक रूप का सर्प है। यह कम से कम छः फुट लम्बा होता है।

कोबरा या शुद्ध नाग उत्तरी तट से लेकर धुर दक्षिणी समुद्र तक के भूभागों में अफ्रीका भर में फैले पाये जाते हैं। एशिया के चश्माचिन्हित नाग और नागराज की जातियाँ अफ्रीका के नाग-साम्राज्य का उत्तर-पूर्वी क्षेत्र में वृहत्तर भाग का ही निर्माण करती कही जा सकती है। अफ्रीका की दो जातियों के शुद्ध नागों में शत्रु की ओर विष की फुहार बड़ी कुशलता से फेंकने का गुण पाया जाता है। यह जानबूझ कर ही प्रहार-क्रिया होती है। ऐसे रूप का विष आँख के कोमल पर्दे पर तुरन्त ही प्रभाव करता है इसलिए इन नागों की दुष्टता का अनुमान किया जा सकता है। विष की फुहार बिल्कुल ठीक निशाने पर बलपूर्वक फेंकी जाती है इसलिए आँख में उसके पहुँचते ही आगंतुक व्यग्र और वेदना ग्रस्त हो उठता है। इतने में आक्रामक नाग को भाग कर अपनी रक्षा करने का अवसर मिल जाता है।

"नैया निग्रिकोलिस" जाति का नाग विष की फुहार थूकने वाला सर्प है। उसे कृष्णग्रीवा नाग भी कहते हैं। यह घातकतम सर्पों की निकटवर्ती जाति कही जा सकती है किन्तु सबसे अधिक घातक सर्प का पद तो "मोम्बाज" जाति को ही प्राप्त है। थूकने वाले साँप की कृष्णग्रीवा जाति का विस्तृत क्षेत्रों में प्रसार है। ऊपरी मिस्र से लेकर दक्षिण में ट्रांसवाल तक यह पाया जाता है। यह आठ फुट की दूरी तक विष की फुहार फेंक सकने में समर्थ होता है। इस कारण खड़े मनुष्य की आँख में वह सहज ही विष पहुँच सकता है। विष की फुहार छोड़ने में क्षण भर ही लगता है। छेड़ने पर यह सिर उठा कर तुरन्त ही विष की फुहार फेंक देता है। इसकी

लम्बाई सात फुट तक होती है। इसके शल्कों का रंग धूमिल और भद्दा होता है। एक उपजाति में काला-नीला रंग होता है और कोई चित्रण पीठ पर नहीं पाया जाता। किन्तु फन फैला कर शत्रु का सामना करते समय इसके फ़न के नीचे दो बड़े आकार के रक्तवर्ण के धब्बे बदन के रंग से बिल्कुल ही पृथक प्रदर्शित होते हैं। एक उपजाति में बदन का रंग जैतूनी (हल्का पीला भूरा) या भूरा होता है और उसके फन के नीचे पीले रंग के धब्बे होते हैं। इनके फन के निम्न भाग के अन्दर कंठ के आरपार एक काली पट्टी बनी होती है जिसकी चौड़ाई सात शल्कों के बराबर तक होती है। इसी कारण इसका नाम कृष्णकंठ या कृष्णग्रीव पड़ा है। काले या गहरे जैतूनी रंग के कृष्णग्रीव सर्पों में फन के नीचे के धब्बे लाल या पीले रंग के ऐसे चमकीले होते हैं मानो तितली के पंख हों। विष थूकने का अर्थ यह न लेना चाहिए कि यह जीभ से उसे फेंकता है। इसका विष तो विषदन्त के मुख से ही सीधे बाहर फेंका जाता है जिसके लिए विष-थैलियों पर पेशियों का दबाव पड़ता है और साँप का मुँह थोड़ा खुला रहता है। लेकिन इसके मुँह में विष का फैलाव कहीं भी नहीं होता।

आश्चर्य की बात है कि विष थूकने वाले इस नाग के विष की मात्रा एक प्रहार में ही कई बूंद होती है। किन्तु वह तो निरंतर छः बार तक विष की फुहार छोड़ सकने में समर्थ पाया जाता है। इसलिए उसमें कितना अधिक विष संचित रहता होगा इसका अनुमान करना सरल है। जंतुशालाओं में इस नाग को काँच की दीवाल वाले कठघरे में रखने पर प्रारम्भ में पाँच-छः मास तक निरंतर नित्य इतना विष फेंक कर काँच को मलीन करते पाया जा सका है कि उसकी पारदर्शिता इतनी लुप्त हो जाती है कि कुछ दिखाई न

पड़े। ऐसी दशा में प्रति पाँचवें-छठे दिन काँच को स्वच्छ करना आवश्यक हो जाता है। ऐसे विष के भण्डार को छः महीने तक बराबर उत्पन्न करते रहना और उसे दर्शक के नेत्रों की सीध में फेंकने की दृष्टि से काँच की दीवाल पर फेंकते रहना ऐसे प्रबल विषधर का ही काम हो सकता है। प्रयोगों में यह अवश्य देखा गया है कि नित्य अधिक समय तक विष-निस्सरण होते रहने से पहले की अपेक्षा बाद के विष में तीव्रता की समानता नहीं होती। फिर भी यह श्वास के साथ फेफड़े में पहुँचने पर कोमल त्वचा को हानि पहुँचा सकता है।

कृष्ण नाग (नैया मेलानोल्यूका) सात फुट लम्बाई का सर्प है। इसके बदन पर काले शल्क बिल्कुल काँच की तरह चिकने होते हैं। यह क्रुद्ध होने पर काटने दौड़ पड़ता है। इसके स्थानीय रूप से विभिन्न रंग होते हैं। परन्तु चिकने शल्क इसके विशेष लक्षण हैं। मध्य अफ्रीका में एक उपजाति ऐसी पाई जाती है जिसमें बदन के अगले आधे भाग का रंग धुँधला भूरा होता है और पिछले आधे भाग का रंग काला होता है। यह उष्ण कटिबन्धीय अफ्रीका में ही पाया जाता है। दक्षिणवर्ती अफ्रीका में नहीं पाया जाता।

दक्षिणवर्ती अफ्रीका में अंतरीपीय नाग (नैया निविया) या केप नाग पाया जाता है। यह दक्षिण में केप कालोनी से लेकर उत्तर में टाँगानियका तक पाया जाता है। इसका रंग प्रायः पीलापन-सा होता है परन्तु लालपन लिये या भूरा या काला तक हो सकता है। यह पाँच फुट लम्बा होता है। चूहों की खोज में यह बस्तियों के निकट आकर प्राणघातक सिद्ध होता है।

एक नाग दीर्घ नेत्रों का होता है जिसे दीर्घनेत्री नाग "नैया गोल्डाई" कहते हैं। यह पश्चिमी अफ्रीका में निम्न नाइजर से लेकर

गोल्ड कोस्ट और केमेरून तक फैला पाया जाता है। यह प्रायः वृक्ष-चारी सर्प है। इसका आकार लम्बा होता है। बदन के ऊपरी तल का रंग कलौंछ (काला-सा) और निम्न तल का हरापन लिये पीला होता है। एक नाग फणहीन होता है जो मध्य अफ्रीका में पाया जाता है। इसे "नैया ऐंचियेटी" कहते हैं। फण न होने पर भी सिर तिरछे रूप में ऊपर उठाता है। उपरोक्त दीर्घनेत्री नाग भी लगभग फणहीन होता है। ऐंचियेटी नाग का रंग गहरा भूरा या काला होता है। थूथन के छोर और सिर के पार्श्वों का रंग पीला होता है। रिंघल नाग भी विष थूकने वाला नाग है, परन्तु इसकी लम्बाई चार फुट ही होती है और इसका विष छः फुट तक ही पहुँच सकता है। इसलिए खड़े मनुष्य की आँख पर इसका प्रभाव नहीं पड़ सकता। घास-पात में झुके होने पर इसके विष की फुहार आँख में पहुँच सकती है। इसके शल्क आभाहीन होते हैं और उनका रंग मटमैला काला या भूरा होता है। इसके अधोतल का रंग कलौंछ होता है। गर्दन पर धूमिल रंग की एक या दो अँगूठियाँ होती हैं। क्रुद्ध होकर सिर उठाने पर इसके उदर की पट्टिकाएँ बदन के रंग से विभिन्न रंग की चमकीली दिखाई पड़ जाती हैं। यह सर्प अंडे नहीं देता बल्कि सदेह शिशु ही उत्पन्न करता है इसलिए पिंडज कहा जा सकता है। अन्य सब नाग अंडा ही देते हैं। एक बार में दो से पाँच दर्जन तक बच्चे पैदा होते हैं इसलिए बस्तियों के निकट इनकी भरमार हो जाती है।

मोम्बाज अफ्रीका का सबसे प्रसिद्ध सर्प है। इसकी अनेक जातियाँ होती हैं। इनका विष तीव्र घातक होता है। सन्तानोत्पादन काल में इसके अड्डे की जगहों के निकट इसके द्वारा काटे जाने का अधिक भय रहता है। अन्य समयों में छेड़े न जाने पर यह दिखाई

पड़ने पर भाग जाने का ही प्रयत्न करता है। ये सर्प कृशकाय होते हैं। सिर पतला होता है। आँखें बड़ी होती हैं। बदन का आकार कोड़े या चाबुक की तरह ही होने से वृक्षचारी लता सर्पों से इनका आकार मिलता है किन्तु ये उतने लम्बे आकार के नहीं होते। किन्तु मोम्बाज की कई जातियाँ धुँधले हरे रंग की भी होती हैं। जिससे लता सर्प होने का धोखा हो सकता है। हरे मोम्बाज सात-आठ फुट तक लम्बे होते हैं, कुछ मोम्बाज नाग इतने गहरे जैतूनी रंग के होते हैं कि प्रकाश न पड़ने पर काले रंग के ही जान पड़ते हैं। ये हरे रंग के मोम्बाज से बड़े आकार के होते हैं। इनकी लंबाई बारह फुट तक हो सकती है। लम्बाई में नागराज भी इतना ही होता है परन्तु लम्बाई की समानता रखने पर भी नागराज मोम्बाज से दुगुना मोटा होता है।

जब मोम्बाज सर्प काटने के लिए मुँह खोले हो तो उसके विषदन्त मुँह में इतना आगे निकले दिखाई पड़ेंगे मानो वे उसकी नाक से ही निकले हों। वे सीधे अधोमुखी होते हैं। विषदंत का यह प्रचंड रूप उसकी कृशता और मुख बंद रखने पर प्रदर्शित भोलेपन के सर्वथा विरुद्ध होता है। इनका विष भी बड़ा भयानक होता है। यह कहा जा सकता है कि नागों ने ही वृक्षचारी रूप बना कर अपना शरीर इसलिए कृशकाय बना लिया कि शाखा-प्रशाखा पर सुगमतया पहुँच कर जीवनयापन कर सकें, इसकी अगली पस-लियाँ थोड़ी लम्बोतरी होती हैं जिससे गर्दन कुछ सीमा तक चपटी बन सकती है। जब यह सर्प पूर्ण क्रुद्ध न होकर केवल सजग होकर ही किसी वस्तु पर दृष्टिपात कर रहा हो तो उसकी गर्दन इस तरह चपटी बनी दिखाई पड़ सकती है किन्तु यह अपने सिर और अगले बदन को पीछे मोड़ कर इतनी शीघ्र दुहरा बना सकता

है कि सिर बदन के तिहाई भाग से भी बहुत अधिक पीछे तक पहुँच जाता है। वृक्षों पर तो यह पक्षियों को आहार बनाने की धुन में रहता है, परन्तु भूतल पर भी क्षुद्र कृन्तकों की खोज में आ पहुँचता है। ऐसे शिकार के समय इसकी गति बहुत वेगवती होती है। उस दशा में इसे छेड़ना भयावह होता है।

मोम्बाज की चार जातियाँ पाई जाती हैं। इनमें दक्षिण अफ्रीका की जाति "डेंड्रास्पिस ऐंगुस्टिसेप्स" सबसे अधिक प्रसिद्ध है। इसका प्रसार टांगानियका से पश्चिम अफ्रीका तक कांगों के दक्षिण और दक्षिण में नैटाल तक है। यह हरे और काले दो रंगों का पाया जाता है। एक दूसरी जाति उत्तर पश्चिम में नाइजर तक पाई जाती है। एक जाति इथोपिया में पाई जाती है।

अफ्रीका के मण्डली सर्प

मण्डली या पृदाकु (वाइपराइडी) वंश की लगभग तीस जातियाँ अफ्रीका में पाई जाती हैं। कौसस प्रजाति की चार जातियाँ साधारण सर्प वंश की तरह होती हैं। उनके सिर पर कवच-सा होता है। ये अण्डे देती हैं। इनके आँख की पुतली गोली होती है।

अंतरीपीय मण्डली को रात्रिचारी मण्डली सर्प भी कहते हैं। यह कौसस प्रजाति का ही है। यह दो-तीन फुट लम्बा होता है। दक्षिण अफ्रीका के अधिकांश क्षेत्र में इसका प्रसार है। इसका विष भी हल्का होता है। इसका रङ्ग खाकी होता है और उस पर चौकोर, गहरे रङ्ग के धब्बों की जंजीर-सी बनी होती है जिनमें पतली किनारी भी बनी होती है। सिर के पिछले भाग में तीर की नोक-सा चिन्ह भी बना पाया जाता है। जिसकी नोक आगे की ओर रहती है। यह छेड़े जाने पर कुण्डली बना कर रौद्र रूप प्रदर्शित करता है और

नाग की तरह गर्दन चपटी कर भूमि से पाँच इञ्च ऊपर तक उठाकर डराता है। फिर भाग खड़ा होता है।

कौसस प्रजाति के सर्पों में विषथैली गर्दन तक फैली पड़ी होती है। वह कई इञ्च तक लम्बोतरी बनकर गर्दन में पहुँची रहती है। ये सर्प मेढकों को ही खाते हैं। अंडज जन्तुओं को खाने की विशेषता इस वंश के अधिकांश अन्य सर्पों से इनकी विभिन्न प्रकृति प्रदर्शित करती है। इनका प्रसार अफ्रीका के दोनों समुद्र तटों तक और उष्ण कटिबन्धीय भाग तक है। इनके बदन पर भी चौकोर चिन्ह बने होते हैं। बदन का रङ्ग खाकी से लेकर हरापन तक होता है। इसकी दो जातियों में थूथन का भाग ऊपर उठा होता है जो शायद बिल खोदने के काम आता है।

वाइपरा प्रजाति के मंडली सर्प की बहुसंख्यक जातियाँ योरप में मिलती हैं, परन्तु अफ्रीका में दो ही जातियाँ होती हैं। इनमें से एक "वाइपरा सुपरसिलियारिस" तो मोजंबिक में पाई जाती है और दूसरी पूर्वी अफ्रीका में मिलती है।

बाइब्रिटिस प्रजाति की आठ बड़ी जातियों के मण्डली सर्प अफ्रीका में पाये जाते हैं। ये बड़े ही भयानक सर्प होते हैं। उन्हें भयानकता की मूर्ति ही कहा जा सकता है। जितना भयानक रूप होता है उतना ही भयानक इनका कर्म भी होता है। इनका प्रसार अफ्रीका के लगभग उन सब भूभागों में है जहाँ नागवंशी सर्प पाये जाते हैं। लम्बाई की तुलना में इनका शरीर अधिक स्थूल होता है और सिर बहुत चौड़ा होता है। विषदन्त बड़े विशाल होते हैं। ये विद्युत-वेग से विषदन्त का प्रहार करते हैं। पफ ऐडर (बाइटिस एर्येटेंस) जाति का सबसे अधिक प्रसार पाया जाता है। इसकी लंबाई

साढे चार फुट तक होती है जो नौ इंच घेर की मोटाई का हो सकता है। "बाइटिस कोरनूटा" जाति के सर्प में प्रत्येक नेत्र के ऊपर सींग समान उभाड़ बने होते हैं। कई नोकीले शल्क जुट कर इसकी लम्बी-सी सींग बनाते हैं। गैबून वाइपर नाम का प्रसिद्ध भयानक सर्प भी बाइटिस प्रजाति का होता है।

गैबून मण्डली (बाइटिस गैबोनिका) संसार का सबसे भयावह दिखाई पड़ने वाला सर्प है। एक चार फुट लम्बे गैबून मण्डली का बदन तीन इंच व्यास की गोलाई का हो सकता है और उसका सिर चार अंगुल की चौड़ाई (एक चवे) के बराबर होता है। किन्तु इसका मोटा बदन पीछे की ओर अकस्मात पतला होकर कुंद बना होता है। आगे भी गर्दन पतली बन गई होती है जिससे सिर बहुत चौड़ा और डरावना दिखाई पड़ता है। इसके बदन का रंग सुन्दर और चित्रण व्यवस्थित होने पर भी इसकी भयानकता बढ़ाता ही है। वह तो जादूगरनी के ताने-बाने-सा ही दृश्य प्रदर्शित करते हैं। पीठ पर ठीक दीर्घवृत्तीय रूप के लाल भूरे रङ्ग के धब्बों की शृङ्खला होती है जो गहरे भूरे रङ्ग के अंडाकार घेरे से घिरे होते हैं और इसके भी ऊपर नीले लाल रङ्ग के चिन्हों की शृङ्खला होती है। पार्श्व भाग में नीलारुण (नीले लाल) या गहरे भूरे रंग के त्रिकोणीय धब्बे होते हैं जो ऊर्ध्वमुखी होते हैं। इन सब चित्रणों की पृष्ठभूमि स्पष्ट रूप के हल्के गुलाबी भूरे रंग की होती है। प्रत्येक नेत्र के नीचे एक गहरे भूरे रंग का धब्बा प्रारंभ होता है और नीचे तथा पीछे की ओर जबड़ों तक पहुँच कर त्रिकोण का निर्माण करता है। आँखों का रंग रुपहला होता है। कुछ गैबून में नाक के ऊपर इकहरी सींग और कुछ में दोफंकीय सींग होती है।

मंडली और गर्त्त मंडली सर्पों में रक्त-विनाशक विष की प्रधा-

नता होती है। नई दुनिया के उष्ण कटिबन्धीय कर्कर (झिनझिनिया) सर्प ही इसके अपवाद हैं। किन्तु यह आश्चर्य की बात है कि गैबून मंडली सर्पों में वंश की विशेषता वाला तंतु और रक्तविनाशक विष ही उत्पन्न नहीं होता, बल्कि नागवंशी सर्पों की विशेषता वाला स्नायु-नाशक विष भी उत्पन्न करने की भी वैसी ही शक्ति होती है। पूरी तरह विषदन्त गड़ाने के स्थान पर उसकी साधारण खरोंच से भी घातक प्रभाव हो सकता है।

बाइटिस प्रजाति में ही नेसिकार्निस जाति का सर्प गैबून से भी अधिक घातक कहा जाता है। इसे गंडक मंडली भी कहते हैं। यह नदियों के किनारे पाया जाता है। इसलिए सरिता मंडली भी कहा जा सकता है। इसका बदन भी गैबून की तरह स्थूलकाय होता है। परंतु सिर छोटा और पतला होता है। किन्तु थूथन पर दो ऊँची सींगें इसका विकराल रूप बनाती हैं। उनके आधार में कभी-कभी अन्य छोटी सींगे भी होती हैं। यह सर्प चार फुट तक लम्बा होता है और उष्णकटिबन्धीय पश्चिमी अफ्रीका में पाया जाता है।

मरुस्थलीय मंडली सर्प भी सहारा में होते हैं। वे दो फुट तक लम्बे होते हैं। उनका रंग मटमैला पीला या हल्का गुलाबी या बलुहा होता है। एक शृङ्गीय बलुहा मण्डली (सिरेस्टीज कौरनूटा) होता है। इसकी प्रत्येक आँख के ऊपर सींग बनी होती है। यह सर्प ढाई फुट लम्बा होता है।

क्षुप मंडली सर्प (एथेरिस) की कई जातियाँ अफ्रीका में पाई जाती हैं। इनकी लम्बाई एक गज होती है और हरा रंग होता है। ये छोटे वृक्षों और झाड़ियों में रहते हैं। रक्षा के लिए ये प्रहार कर सकते हैं परन्तु साधारणतया मनुष्य से डरते हैं।

एट्रैक्टेस्पिस प्रजाति के मंडली सर्प डेढ़ दो फुट लम्बे होते हैं। ये दुबले और लम्बे होते हैं। विषदन्त छोटे होते हैं जो छोटे शिकारों के लिए बने होते हैं। इनमें नेत्र छोटे होते हैं और दृष्टि दुर्बल होती है। ये अंडा देते हैं।

चित्र २४—इन्द्रधनुषीय या मुद्रिकांकित बोआ (देखिए पृष्ठ ५७)

चित्र २५—दक्षिणी अमेरिका का कुंडलपाशीय बोआ (देखिए पृष्ठ ५४)

भारत के घातक सर्प

साँप तो काल की मूर्ति ही होता है। उसे सामने देखकर साधारण साहस के मनुष्य की बुद्धि खो-सी जातो है। ऐसे रूप के जन्तु की चर्चा, पहचान, अन्य वर्णन आदि कठिनाई की बात है। फिर भी साहसी व्यक्ति यदि नाग को देव भावना से संयुक्त न समझें तो सामना होने पर मार डालते हैं। साँप द्वारा किसी मनुष्य के काट लिये जाने पर तो लोग उसे हाथ से निकल न जाने देने का सब कुछ प्रयत्न करते हैं। जब साँप को दूसरे साहसी व्यक्ति ने मार दिया तो शव का अवलोकन तो सब के लिए सुलभ हो जाता है। फलतः गाँवों में सर्वसाधारण लोग साँपों की अच्छी पहचान रखते हैं। जो लोग न तो नगर के जीवन में ही इतनी उन्नति कर सके हैं कि पुस्तकों, प्रयोगशालाओं, संग्रहालयों या विश्वविद्यालयों की शिक्षा द्वारा जन्तुओं के अध्ययन के साथ सर्पों की पूर्ण जानकारी कर सकें और न ठीक तरह देहात के व्यावहारिक जीवन में रह कर प्रत्यक्ष वस्तुओं, जीव-जंतुओं, पेड़-पौधों आदि के निरीक्षण करते रहने का अवसर ही पा सके हैं, उनके लिए ही सुविधापूर्वक कुछ जानकारी का साधन बनाने के लिए यहाँ पर कुछ वर्णन देना आवश्यक है।

प्रत्यक्ष व्यावहारिक जीवन में देख सकने का अवसर न मिलने पर साँपों के विभिन्न भेदों को जानना कुछ कठिन हो सकता है। जो वर्णन वैज्ञानिक ग्रंथों में मिलते हैं उनमें दुरूहता प्रतीत हो सकती है। साधारण पाठक के ध्यान में यह बात उठ सकती है कि विशेष ज्ञान के क्षेत्र विशेषज्ञों के ही मस्तिष्क की वस्तु हो सकते हैं। इसी तरह सर्पों की जाति-प्रजाति, वंश आदि की चर्चा, उनकी ठीक पह-

चान या वर्णन भी विज्ञान के विशेष विद्वानों का ही विषय हो सकता है। परन्तु साधारण पाठक भी विविध विषयों की कुछ झाँकी लेने के लिए उत्सुक रहता है। कोई भी विषय थोड़ा प्रयत्न करने पर जनसाधारण के लिए बोधगम्य हो सकता है। फलतः हम भारतीय सर्पों की जातियों के भेद जान सकने के लिए कुछ ब्यौरों की चर्चा करने का प्रयास कर रहे हैं।

संसार में सर्पों की कुल ढाई हजार जातियाँ ज्ञात हैं। उनमें से पौने चार सौ से कुछ अधिक जातियों के सर्प भारत में पाये जाते हैं। समुद्री साँप समुद्र क्षेत्र में कहीं विशेष व्यवधान न होने से दूर-दूर तक फैले मिल सकते हैं, परन्तु स्थलवासी सर्पों के प्रसार में भारी व्यवधान बाधक होते हैं। भारत में हिमालय तथा महासागर के कारण बाहर से साँपों की जातियाँ पहुँचने के मार्ग सीमित हैं। पश्चिम दिशा से दक्षिणी-पश्चिमी एशिया (ईरान, तुर्की आदि) क्षेत्र के सर्पों की जातियाँ आ मिली हैं। पूर्व से चीन और हिंद चीन की जातियाँ पहुँची पाई जाती हैं। मलाया क्षेत्र के सर्पों की भी कुछ जातियाँ आस की हैं जिनके विशेष उदाहरण ऐंडमन और निकोबार में हैं। पहले कभी स्थल मार्ग से संवद्ध रहने पर इन जातियों का वहाँ तक प्रसार हुआ होगा।

इनके अतिरिक्त भारत की बहुत-सी जातियाँ और प्रजातियाँ ऐसी हैं जिनमें से कुछ विशेष इसी क्षेत्र में प्रचलित हैं और बहुत-सी ऐसी हैं जो संसार के अन्य भागों में भी पाई जाती हैं। परन्तु वंश रूप में तो भारत में पाये जाने वाले साँपों को सब का प्रतिनिधित्व करते पाया जाता है। अर्थात् जन्तुशास्त्रियों ने सर्पों की जातियाँ जिन विभिन्न वंशों में विभाजित की हैं, उन वंशों की कुछ न कुछ जातियाँ भारत में अवश्य पाई जाती हैं। इसका यह अर्थ नहीं हुआ कि सब किस्मों या जातियों को यहाँ पाया जाता है।

सर्पों की जातियाँ निर्धारित करने के विशेष लक्षण विद्वानों ने निर्धारित किये हैं। उनका सूक्ष्म ज्ञान साधारण पाठक को होना आवश्यक नहीं। वे तो विशेष अध्ययन और सूक्ष्म विवेचन की वस्तुएँ हैं। थोड़े में हम यह समझ सकते हैं कि वे किस प्रकार इन विभेदों को निश्चित करते हैं। कुछ विभाजन सर्पों की जननेन्द्रिय पर किये पाये जाते है। साँप के अधोतल में पूँछ प्रारंभ होने की जगह को उरु प्रदेश कह सकते हैं। वहाँ पर ही गुदाद्वार होता है। एक चकत्ती (पट्टक) उसको मूँदे रहती है। उस चकत्ती को गुदा पट्टक कहते हैं। इसके नीचे नर साँपों में एक जोड़े जनन लिंग होते हैं। नर जोड़ा-खाने में किसी एक पार्श्व में जनन लिंग का ही प्रयोग मादा की स्थिति के अनुरूप करता है। इन जननलिंगों को अनेक आकार-प्रकार का पाया जाता है परन्तु भारतीय सर्पों की जातियों का विभेदन करने के लिए इस आधार को विश्वस्त और उपयोगी नहीं माना गया है।

साँपों की जातियाँ निर्धाति करने में बदन के ऊपर पाये जाने वाले छिछड़ों (शल्कों) द्वारा बड़ी सहायता मिलती हैं। जब साँप अपनी केंचुल उतार फेंकता है तो हम उस में चारखाने की तरह खाने बने पाते हैं। इनको ही शल्क या छिछड़ा कहा जाता है। इनकी आकृति विभिन्न होती है। कुछ शल्क तो पतले और लम्बोतरे होते हैं जिनमें प्रत्येक में नोकीली छोर होती है। कुछ शल्क चौड़े और पत्तीनुमा होते हैं तथा कुछ शल्क जितने चौड़े होते हैं उतने ही, या लगभग उतने ही लम्बे होते हैं। इन प्रकारों के अनेक भेदों रूप में सर्पों के शल्क होते हैं। वे साँप के बदन पर प्रायः खपरैल की तरह एक दूसरे पर आरोहित रह कर खड़ी और आड़ी पंक्तियाँ बनाये रहते हैं। उसी कारण चारखाने-सा रूप बना दिखाई पड़ता है।

खड़ी या लंबवर्ती पंक्तियों की संख्या से साँपों को जातियाँ पहचानने में विशेष सहायता मिलती है। उन पंक्तियों की संख्या धड़ के बीच में ही सब से अधिक होती है। इन पंक्तियों को जाति-जाति के अनुसार विभिन्न संख्या में पाया जाता है। सब से कम संख्या १३ पाई जा सकतो है और सबसे अधिक संख्या अजगरों में ६५ से ७५ तक। है। हस्तिशुंड जल सर्प को ऐक्रोकोर्डस प्रजाति में, जो दक्षिण भारत के समुद्र तट पर पाई जाती है, १३० से १५० तक होती है। किन्तु इस जल सर्प के शल्क अत्यन्त क्षुद्र और न्यूनाधिकतया रवेदार रूप के ही होते हैं, जिनकी ठीक गिनती कर सकना भी कठिन है।

साँप के बदन पर ऊपर दिखाई पड़ने वाली शल्क पंक्तियाँ ऊर्ध्वतलीय या पृष्ठीय कहलाती हैं। बिल्कुल मध्यपृष्ठ की पंक्ति पृष्ठवंशीय कहला सकती है। अधिकांश जातियों में बाह्यवर्ती पंक्ति या पंक्तियाँ अन्यों की अपेक्षा बडी होती हैं। बहुत-सी जातियों में जिन में शल्क-पंक्तियों की संख्या कम हो गई है, सब शल्कों का आकार समान ही पाया जाता है। कुछ जातियों में पृष्ठवंशी पंक्ति के शल्कों का आकार बड़ा होता है। कुछ जातियों में शल्कों की छोर द्विदंतीय पायी जाती है। शल्कों को चिकने तल का भी पाया जाता है और उभड़े या बीच के भाग को कुछ मस्सेनुमा उठे रूप (उरः कूट) का भी पाया जाता है। चिकने तल के शल्क को चिक्कणतलीय कहते हैं। तल पर मस्सानुमा उभाड़ होने से उसे उद्वर्धनतलीय या उरः कूटीय कह सकते हैं।

धड़ के मध्य में शल्क-पंक्तियों की सबसे अधिक संख्या बड़े महत्व की होती है। गर्दन तथा पिछले भाग में शल्क-पंक्तियों की संख्या गिनने का कोई एक ही स्थान नहीं माना जा सकता। प्रत्येक जाति के वर्णन में पहचान का लक्षण शरीर के मध्य भाग की शल्क-

पंक्तियों को भी बताया जाता है। गर्दन या पिछले भाग के शरीर की शल्क-पंक्तियाँ भी अलग बताई जा सकती हैं। इनके अतिरिक्त उदर की स्थिति दूसरी होती है। किसी भी केंचुल को उठा कर देखने से तुरन्त पता चल सकता है कि पृष्ठतल कौन है और उदर-तल कौन है। उदरतल पर प्रायः बड़ी-बड़ी आड़ी पंक्तियों समान चकत्तियाँ या खंड जान पड़ते हैं। ये खंड शल्क के ही ऐसे रूप हैं जिनमें चौड़ाई लम्बाई से अधिक होती है अर्थात् उनका फैलाव साँप की खड़ी या सोध या लम्बान में जितना होता है उससे अधिक चौड़ान में होता है। अतएव इनको शल्क न कह कर उदर कवच या पट्टक कहते हैं। शल्कों से कुछ बड़ा रूप मुख के ऊपर खंड-खंड में आवरक कवच या चकत्ती-सा होता है। उनको भी पट्टक (शील्ड) नाम दिया जाता है। सिर के अलग-अलग भागों या स्थलों के कुछ नाम पाये जाते हैं जो पट्टकों द्वारा आच्छादित होते हैं अतएव वे पट्टक भी उन स्थलों के नाम से पुकारे जाते हैं। उन स्थानीय नाम के पट्टकों की संख्या और छोटे-बड़े आकार के साथ पारस्परिक स्थितियों को बता कर भी एक जाति के सर्प को दूसरे से भिन्न जान सकना सम्भव होता है।

साँपों के उदर वाली आड़ी चकत्तियों या पट्टकों को किसी जाति में तो इतना छोटा पाया जाता है कि बिल्कुल शल्क ही हो। समुद्री सर्पों में उन्हें अन्य शल्कों के प्रायः बराबर ही पाया जाता है। नदी, तालाबों के निर्विष सर्पों में वे बदन की चौड़ाई के प्रायः आधे होते हैं परन्तु विषधर सर्पों या अन्य जातियों में उदर पट्टकों को उदर की पूर्ण या लगभग पूर्ण चौड़ाई में फैला पाया जाता है।

उरुदेशीय शल्क भी पट्टक कहलाता है जो समूचा या कई

खण्डों का हो सकता है। पूँछ के निम्न तल में भी उदर पट्टक की तरह पट्टकों की शृङ्खला होती है। वे प्रायः जोड़े रूप में होती हैं। (चित्र १ ग) अनेक जातियों में इन पुच्छतलीय पट्टकों को जोड़े या दो खंडों में बँटा न होकर इकहरा ही पाया जाता है (चित्र १ क)। ऐसे मिश्रित रूप भी होते हैं जिनमें पुच्छतल का कुछ भाग तो पूरे-पूरे पट्टकों की शृङ्खला बनाये हो और कुछ भाग में वे द्विखंडीय हों (चित्र १ ख)। कुछ में गुदादेशीय, पट्टक समूचा होता है और कुछ में द्विखंडीय या खंडित होता है।
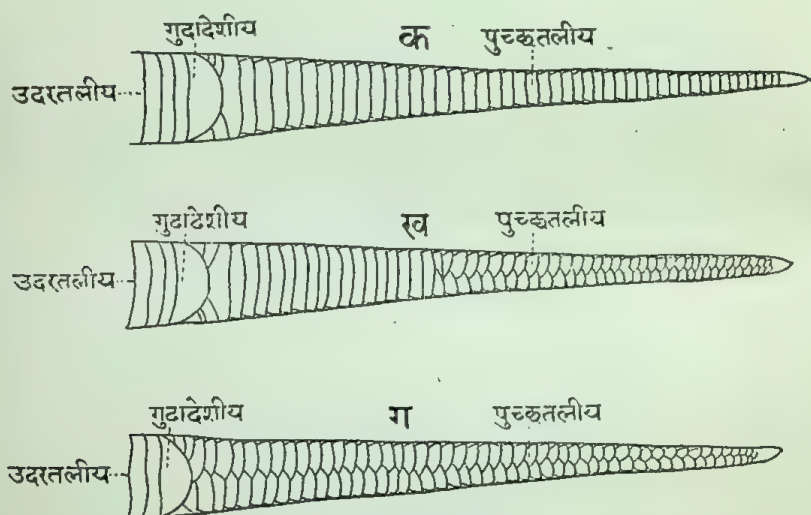
चित्र १—साँपों के पुच्छतलीय पट्टक

उदरतलीय तथा पुच्छतलीय पट्टकों की संख्या महत्वपूर्ण होती है। अपेक्षाकृत छोटी दुम होने के कारण मादा साँप में नर साँप से कम संख्या के पुच्छतलीय पट्टक होते हैं। कुछ जातियों में इन पुच्छीय पट्टकों की संख्या में भेद अधिक स्पष्ट होता है। उदरतलीय तथा पुच्छतलीय पट्टकों की संख्या रीढ़ की हड्डियाँ, कशेरुकाओं की संख्या

के बिल्कुल अनुरूप पाई जाती है अतएव वह सर्प के शरीर के फाँकों की संख्या भी प्रदर्शित करती है।

सिर के विभिन्न अंगों और स्थल पर के आवरण-कवचों या पट्टकों का नाम चित्र देखकर स्मरण रखने का प्रयत्न किया जा
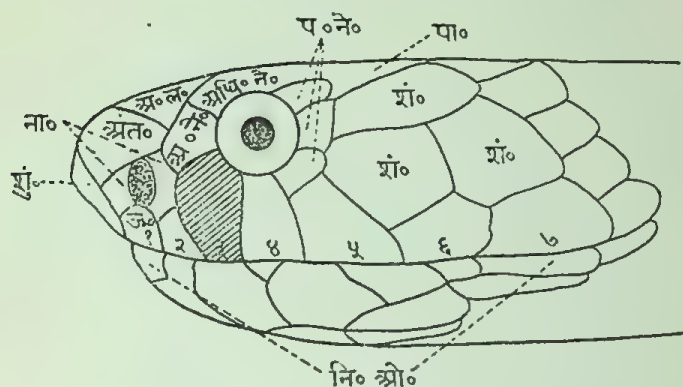
चित्र २—नाग (कोबरा) या फणी सर्प का मुँह १, २, ३, ४ आदि संख्या ऊर्ध्वोष्ठीय पट्टक है। उनके नीचे निम्न ओष्ठीय पट्टक है जिन पर संख्या नहीं दी है।

सकता है। यदि कोई मरा साँप या केंचुल मिल जाय जिसमें सिर का भाग पूर्ण हो तो इन विभिन्न पट्टकों की स्थिति बहुत अच्छी तरह समझ में आ सकती है। इनकी कुछ जानकारी किये बिना इतने छोटे मुख की विभिन्नताएँ जानना कठिन ही हो सकता है। जिनको इनकी रुचि न हो वे अन्य वर्णनों से ही संतोष कर सकते हैं। कुछ विशेष स्थल के पट्टकों को तो साधारण व्यक्ति भी पहचान सकता है।

सिर के चित्रों को देखने से भिन्न-भिन्न स्थलों के शल्कों का परिचय मिलता है। इनमें विभेद होते हैं। किसी में कोई कम आकार या संख्या का होता है या बिल्कुल ही नहीं होता, किसी में अधिक संख्या का या अपेक्षाकृत बड़ा होता है। स्थिति में भी कुछ हेर-फेर होता है।

ऊपरी जबड़े का सबसे अगला किनारा चोंच की जगह होने के

कारण चंचु या तुंड कहलाता है। वहाँ का शल्क तुंडीय कहलाता है। ऊपरी ओठ की लम्बाई वाले किनारे के भाग में स्थित पट्टकों को पाँच-सात की संख्या में क्रमबद्ध स्थित पाया जाता है। वे ऊर्ध्वोष्ठीय कहलाते हैं। यदि ऊपरी सिरे पर मध्य भाग में सीधी रेखा में देखा जाय तो शुंडीय के बाद हमारे नासामंच (नाकों के छेदों के ऊपर हड्डी का उभाड़) की स्थिति पर का भाग मिलेगा जिसके दोनों बगल नाक के पट्टक होते हैं। इसलिए इस बीच वाले पट्टक या उनके जोड़े को अंतर्नासा या अंतर्नासिकीय पट्टक कहेंगे। इसके पीछे मध्यवर्ती सीध में एक जोड़े शल्क हो सकते हैं जिनको अग्र ललाटी कह सकते हैं। ललाटीय स्थल या पट्टक उसे कहा जाता है जो दोनों नेत्र के मध्य सिर के ऊपर स्थित होता है। पार्श्ववर्ती भाग में देखने पर नासा शल्क के ठीक पीछे आँख की सीध में एक पट्टक हो सकता है जिसे नासा पार्श्वीय या पश्च नासा कहना चाहिए। यह पट्टक विषधरों में नहीं पाया जाता। ललाट और नेत्रों के मध्य का स्थान भौं की स्थिति समान मान कर उसको आच्छादित करने वाले पट्टक को भ्रू पट्टक या अधिनेत्रीय पट्टक कह सकते हैं। नेत्र और नाक की सिधाई में नेत्र के पूर्व का पट्टक अग्रनेत्रीय और पश्चात् का पट्टक पश्चनेत्रीय कहला सकता है। आँखों के पट्टकों के बाद के पट्टक पार्श्ववर्ती सीध में ओष्ठतटीय, पट्टकों (ऊर्ध्वोष्ठीय) के ऊपर स्थित होते हैं। उन्हें कनपटीय या शंखिकीय कहते हैं। मध्य में सिर के पिछले भाग ललाट पट्टक के पीछे होती है, उसे पश्चिका पट्टक कहते हैं।

चित्रों के संकेत वर्ण

गु०	गुदादेशीय पट्टक	(एनल)
अ० उ०	अग्र उपजिह्वक	(ऐंटीरियर सब लिंग्वल)
पृ०	पृष्ठीय	(डार्सल)

ल० ललाटीय (फ्रांटल)
अंत० अंतर्नासा (इंटर नैसल)
ना० पा० नासापार्श्वीय (लोरियल)
चि० चिबुकीय (मेंटल)
ना० नासिकीय (नैसल)
पका पश्चादिका (ओकिपिटल)
प० पार्श्विका (पैरियटल)
प० ने० पश्च नेत्रीय (पोस्ट आकुलर)
अ० ने० अग्रनेत्रीय (प्रिआकुलर)
अ० ल० अग्रललाटीय (प्रि फ्रांटल)
प० उ० पश्च उपजिह्वक (पोस्टीरियर सब लिंग्वल)
शुं० शुंडीय या ओष्ठाग्रीय (रोस्ट्रल)
अधि० ने० अधिनेत्रीय (सुपरा आकुलर)
नि० पु० निम्न पुच्छीय (सब कौडल)
अ० ना० पा० अधिनासापार्श्वीय (सुपरा लोरियल)
उ० ने० उपनेत्रीय (सब आकुलर)
उ० जि० उप जिह्वक (सब लिंग्वल)
शं० शंखिका (टेम्पोरल)
उ० त० उदरतलीय (वेंट्रल)
पृ० वं० पृष्ठ वंशीय (वर्टीब्रल)
ऊ० ओ० ऊर्ध्वोष्ठीय (सुपर लेबियल)
नि० ओ० निम्नोष्ठीय (इनफ्रा लेबियल)

नाग (कोबरा)

नागों में एक विषदंत मुख के पिछले भाग में होता है। उसके पीछे एक से लेकर तीन तक छोटे साधारण दाँत होते हैं। सिर गर्दन से बिल्कुल स्पष्ट नहीं दिखाई पड़ता। इसकी एशियाई जातियों में फण बनाने की शक्ति होती है। आँखें साधारण और पुतली गोल होती हैं। नाक एक अग्रनासिकीय और एक पश्चनासिकीय पट्टक के बीच में स्थित होता है। सिर के अन्य पट्टक सामान्य होते हैं किन्तु

नासापार्श्वीय पट्टक जो पार्श्व रेखा में नाक और आँख के पट्टकों के मध्य स्थित हो सकता है, नहीं पाया जाता है। शल्क चिकने होते हैं जो तिरछे रूप की पंक्तियाँ बनाये होते हैं। बदन पर १ से लेकर २५ तक शल्क पंक्तियाँ हो सकती हैं। पुच्छतलीय पट्टक प्रायः जोड़े रूप के (द्विखंडीय) होते हैं। इस प्रजाति की बारह जातियाँ पाई जा सकी हैं जिनमें दो जातियाँ भारत में पाई जाती हैं। एक जाति साधारण नाग कहलाती है, उसे फणी भी कह सकते हैं। उसमें १९ से लेकर २५ तक शल्क-पंक्तियाँ होती हैं। दूसरी जाति नागराज कहलाती है जिसमें १५ शल्क-पंक्तियाँ होती हैं। साधारण नागों में पश्च कपालीय पट्टक नहीं होता, परन्तु नागराज में होता है।

साधारण नाग (कोबरा या फणी) की पहचान तो सबसे सुगम यही है कि वह सिर उठा कर फन फैला लेता है किन्तु नागराज भी फण फैलाता है तथा एक प्रकार के निर्विष सर्प टोपिडोनोटी प्रजाति के ऐसे होते हैं जो कुछ सीमा तक ही फण फैला सकते हैं। चश्मे की तरह द्वितिलक या एक ही अंडाकार धब्बा सिर पर दिखाने वाला एकतिलक नाग सँपेरों द्वारा गली-गली प्रदर्शित होते हैं, परन्तु कुछ नागों में ये भाल-तिलक इतने अधिक धुँधले या लुप्त होते हैं कि इनकी ही पहचान से उन सर्पों को नाग मानने में लोगों को सन्देह हो सकता है। मृत्यु के बाद तो फण का नाम ही नहीं रहता, इसलिये फण को भी एक मात्र पहचान मानना उचित नहीं।

नागों के मुख पट्टकों के सम्बन्ध में कुछ निश्चित लक्षण हैं जिनमें भ्रम नहीं हो सकता। पहली बात तो यह है कि नेत्र के कोटर के पहले वाले पट्टक (अग्रनेत्रीय पट्टक) में नाकों के मध्य स्थित पट्टक (अंतर्नासिकीय या अंतर्नासा पट्टक) को स्पर्श करता है। अपवाद रूप में दक्षिण भारत के एक छोटे निर्विष पर्वतीय सर्प

(ज़ाइलोफिस प्रजाति) और एक दूसरे दुर्लभ रूप के दार्जिलिंग सिक्किम और आसाम के पहाड़ी सर्प पैरिपाज मांटिकोला में ऐसा रूप पाया जाता है परन्तु उन दोनों में एक लक्षण का अभाव होता है जो नागों में ही पाया जाता है। ऊपरी जबड़े के ओठ के पार्श्व-तटीय (ऊर्ध्वोष्ठीय) पट्टकों में से तीसरा सब से बड़ा होता है और नाक के पट्टक (नासा पट्टक) को छूता है परन्तु उन दोनों सर्पों में यह बात नहीं पाई जाती।

मृत नाग का सर्प इतना ध्वस्त हो गया हो कि पट्टकों का रूप न दिखाई पड़ता हो तो उसकी पीठ पर एक विशेषता उसकी पहचान करा सकती है। शल्कों की आड़ी पंक्तियाँ ऐसी स्थित होती हैं कि मध्य रेखा पर हवलदारों या सार्जेंटों के बाँह पर लगाये जाने बिल्ले के समान नोकीला कोण बनाती है।

साधारण नाग (कोबरा) में कुछ सूक्ष्म लक्षण इस प्रकार पाये जाते हैं। आँख के गोले का व्यास लगभग इतना होता है जितनी आँख और मुँह के मध्य दूरी होती है, नाक बड़ी और खड़े रूप में दीर्घवृत्ताकार होती है। ललाट पट्टक चौड़े की अपेक्षा लंबा अधिक होता है। उसकी अगली किनारी कटी-सी होती है। नाकों के मध्य का पट्टक (अंतर्नासा पट्टक) अग्र ललाटीय पट्टक से थोड़ा-सा छोटा होता है। एक अग्रनेत्रीय पट्टक होता है जो प्रायः अन्तर्नासा पट्टक से संस्पर्शी होता है। तीन या कभी-कभी दो ही पश्चनेत्रीय पट्टक होते हैं। सात ऊर्ध्वोष्ठीय पट्टक होते हैं। तीसरा सबसे ऊँचा होता है। तीसरे और चौथे आँख से संस्पर्शी होते हैं। २+३ शंखिकीय या कनपटीय पट्टक होते हैं। तीसरे और चौथे निम्नोष्ठीय पट्टक सबसे बड़े होते हैं। उनके मध्य में मौखिक तट पर एक छोटा त्रिकोणीय शल्क होता है। दो जोड़े चिबुकीय पट्टक होते हैं। बदन पर चिक्कण-

शल्क होते हैं जो तिर्छी रेखा में स्थित होते हैं। बाह्यवर्ती दो या तीन पंक्तियों के शल्क अन्यों से बड़े होते हैं।

साधारण नाग या कोबरा की पूर्ण लम्बाई ५४ इंच से लेकर ६० इंच तक होती है। उसमें पूँछ ६ इंच लंबी होती है। इससे भी बड़े अनेक नमूनों का उल्लेख पाया जाता है किन्तु वे बिरले ही हैं। एक विद्वान् ने एक साधारण नाग का नमूना सात फुट लंबा होने का उल्लेख किया है। नर और मादा दोनों की लंबाई समान होती है।

कोबरा के रंगों और उनके रंग के चित्रणों के अनेक भेद पाये जाते हैं। एक जगह के ही भिन्न-भिन्न कोबरा साँपों के भिन्न-भिन्न रंग हो सकते हैं। आयु के कारण भी रंगों में परिवर्तन होता है। आयु बढ़ते जाने पर धब्बे धुँधले पड़ते जाते हैं या मिट जाते हैं। रंगों, पट्टियों, खंड पट्टियों, चित्रणों आदि के अनेक साँप देखने पर भी इनको एक जाति का ही माना जाता है। कुछ स्थानीय जातियाँ या उपजातियाँ तीन प्रकार की मानी जाती हैं।

एक उपजाति शुद्ध प्रारूपीय (द्वितिलकीय) है। इसमें शरीर के मध्य में २१ से लेकर २५ तक शल्क-पंक्तियाँ होती हैं। गर्दन पर २५ से ३५ तक तथा उरु प्रदेश के समीप १७ या १५ होती हैं। उदरतलीय पट्टकों की संख्या १७६-२०० और पुच्छतलीय पट्टकों की संख्या ४८-७५ होती है। भारत में २० अंश उत्तरी अक्षांश के दक्षिण के भाग में इस उपजाति के सर्पों में गर्दन के ऊपर २७-३५, धड़ (मध्य शरीर) पर २१-२५ शल्क होते हैं। उदरतलीय पट्टक १८२-१८८ तथा पुच्छतलीय ५५-७५ होते हैं। २० अंश उत्तर अक्षांश के उत्तर भारत में गर्दन पर २५-३१, बदन पर २१-२३ होते हैं। उदरतलीय पट्टक १७६-१८९ तथा पुच्छतलीय पट्टक ४८-६१ होते हैं।

दूसरी उपजाति कौंथिया कहलाती है। उसमें गर्दन पर २५-३१, बदन पर १९-२१ शल्क होते हैं। उदरतलीय पट्टक १६४-१९६ और पुच्छतलीय पट्टक ४३-५८ होते हैं।

तीसरी उपजाति शुद्ध पठानी कहला सकती है, हालांकि पहली उपजाति भी पूर्वी पंजाब, काश्मीर तथा पाकिस्तान के पंजाब और सरहदी सूबे में पाई जाती है किन्तु सरहदी सूबे (पठानी इलाके) में केवल यही जाति पाई जाती है। इस उपजाति में गर्दन पर २३-२७; बदन पर २१-२३ शल्क पंक्तिताँ होती हैं। उदरतलीय पट्टक १८६-२१३ और पुच्छतलीय पट्टक ६२-७५ होते हैं।

पहली उपजाति (शुद्ध प्रारूपीय या असली नमूने के नाम) की पहचान के लिए शिशु का रंग बताया जा सकता है। क्योंकि उनमें ही वह बराबर पाया जा सकता है। बदन के ऊपरी तल का रंग पीलेपन या भूरेपन से लेकर काले तक होता है, जिसमें फरण पर काला और श्वेत या काला और पीला चश्मानुमा तिलक या कलंक हो सकता है या नहीं भी हो सकता। फरण के अधोतल पर प्रत्येक ओर एक-एक काला धब्बा होता है और फरण के पीछे उदर पर दो या तीन चौड़ी काली आड़ी पट्टियाँ होती हैं।

दक्षिणी भारत के द्वितिलकीय नाग या शुद्ध प्रारूपीय नाग उत्तरी तल पर प्रायः हल्के या गहरे भूरे रंग के होते हैं और उनमें चश्मेनुमा धब्बा यथेष्ट स्पष्ट होता है। दक्षिण भारत में कोबरा बहुत कम मिलते है। सीलोन में तो उनको प्रायः पाया ही नहीं जाता।

२० अंश उत्तर अक्षांश के उत्तरवर्ती भारत में भाल का तिलक अनेक रूपों का पाया जाता है। नागों की संख्या भी यथेष्ट पाई जाती है। मध्य भारत में गुना जिले में ७७ कोबरा १९०५ में पकड़े गये तो उनमें से केवल दो को छोड़कर शेष सब काले रंग के थे और

उनके फरण पर तिलक का चिन्ह नहीं था। काला या कलौंछ (काला-सा) नाग जिस पर प्रायः चश्मानुमा तिलक भी पूर्ण विद्यमान पाया जाता है, उत्तर प्रदेश, बिहार, उड़ीसा और बंगाल में बहुत पाये जाते हैं।

कौंथिया या एकतिलकीय नाग में शिशु कोबरा के ऊपरी तल का रंग जैतूनी से रंग से लेकर भूरेपन या काले तक होता है जिसमें पीले या नारंगी रंग का एक गोला-सा तिलक फरण पर हो सकता है या नहीं भी हो सकता। इस गोल तिलक को ऊपर-नीचे तनिक लम्बोतरा या अंडाकार पाया जाता है। इस कारण इसे एकतिल-कीय नाग भी कह सकते हैं। फरण के अधोतल पर दोनों ओर एक-एक काला धब्बा होता है और इसके पीछे उदर पर एक या दो चौड़ी काले रंग की आड़ी पट्टियाँ प्रायः होती हैं। उदर का शेष भाग प्रायः पीठ के रंग का ही किन्तु कुछ धुँधला होता है।

यह उपजाति बंगाल और पूर्वी हिमालय में नेपाल तक पाई जाती है। यदि बिहार या उत्तर प्रदेश में एकतिलकीय उपजाति का सर्प मिले तो वह पूर्वी हिमालय से आया हुआ ही होगा। बंगाल और आसाम में शिशु नाग जन्म के समय प्रायः काले ही होते हैं और फरण पर स्पष्ट एक तिलक होता है। बड़े होने पर उनका रंग धुँधला पड़ता जाता है। प्रौढ़ होने पर प्रायः भूरे रंग के या जैतूनी हो जाते हैं। आयु के साथ रंग प्रगाढ़ कभी नहीं होता।

पठानी नाग के शिशु में ऊपरी तल का रंग खाकी-सा या भूरा-सा होता है, जो सर्वत्र एक-सा होता है या गहरे रंग के जालीदार चित्रण मुख्यतः त्वचा में होते हैं या गहरी आड़ी या हवलदारी फीते की आकृति की आड़ी पट्टियाँ होती हैं। बदन की अपेक्षा फरण की खंड पट्टियाँ अधिक काले रंग की होती हैं और शरीर के अधोतल तक

फैली होती हैं। उदरतल श्वेताभ (सफेद-सा) होता है। प्रौढ़ नाग भूरेपन या कालेपन रंग के होते हैं। कोई स्पष्ट चित्रण नहीं होता। निम्न तल का रंग हल्का होता है। शिशु नागों में उस प्रदेश तक पट्टियाँ अधिक स्पष्ट पाई जाती हैं। इसमें द्वितिलकीय फणी समान विस्तृत फण-प्रदर्शन नहीं पाया जाता। यह बात शल्कों की गिनती से स्पष्ट हो जाती है। गर्दन पर के शल्क बदन की अपेक्षा २ से ६ तक, प्रायः ४ ही अधिक होते हैं।

सभी उपजातियों के फणी में फण एक विभिन्न बात होती है। उत्तेजित होने पर वह बदन की पूरी लम्बाई का चतुर्थांश या तृतीयांश भाग ऊपर उठा लेता है। सिर पीछे कर अच्छी तरह साधने पर वह इससे भी अधिक भाग उठा सकता है। काटने के लिए पहुँच तो बहुत सीमित दूरी तक होती है, परन्तु यह अपने विष को तीन फुट की दूरी से ठीक निशाना बनाकर थूक सकता है।

नाग प्रायः जनवरी-फरवरी में जोड़ा खाते हैं और मई में अंडा देते हैं किन्तु अंडा देने का समय कई मासों तक बढ़ सकता है। इस बात का प्रमाण पाया जाता है कि जोड़ा खाने के बाद से शिशु उत्पन्न होने तक नर और मादा साथ ही रहते हैं और अंडों की रखवाली में नर भी भाग लेता है। ६६ से ८४ दिन तक में अंडों से शिशु उत्पन्न होते हैं। एक बार में १० से लेकर २० तक अंडे दिये जाते हैं। एक बार तो ४५ अंडे तक पाये गए जिनमें ३६ निषेचित थे। अंडों से उत्पन्न शिशु की लम्बाई नौ-दस इंच होती है। पहले साल उसके शरीर की तीव्र वृद्धि होती है। जुलाई में १२ इंच का शिशु दूसरे वर्ष की जुलाई में ढाई फुट लम्बा पाया गया।

नागराज

नागराज में विषदन्त के पीछे तीन छोटे दाँत होते हैं। सिर के

पट्टक साधारण भाग से होते हैं। इतना अन्तर होता है कि ललाटीय पट्टक अग्रतट पर कटे नहीं होते। अग्रिम नेत्रीय पट्टक वर्गाकार-सा होता है और पश्च ललाटीय पट्टक द्वारा अंतर्नासा पट्टक से पृथक् बना होता है। शंखिकीय या कनपटीय पट्टक २+२ होते हैं। एक जोड़े पश्च कपालीय पट्टक एक दूसरे के संस्पर्शी होते हैं।

शल्क चिक्कणतलीय, तिरछी पंक्ति में स्थित होते हैं। दो पृष्ठ-वंशीय और दो बाह्यवर्ती शल्क-पंक्तियाँ अन्यों से बड़ी होती हैं। गर्दन पर १७ या १६ शल्क-पंक्तियाँ होती हैं। मध्य शरीर और उरुदेश के सामने १५ शल्क-पंक्तियाँ होती हैं। उदरतलीय पट्टक २४०-२५४ तथा पुच्छतलीय ४८-६४ होते हैं जिनमें अग्रवर्ती पट्टक इकहरे होते हैं। शरीर के अग्रभाग में केवल पृष्ठवंशीय शल्क-पंक्ति बड़ी होती है। पिछले भाग में मध्यवर्ती तीन शल्क-पंक्तियाँ बड़ी हो सकती हैं।

शिशु नागराग के शरीर का ऊपरी तल काला होता है। उसमें श्वेत, पीला मिश्रित लाल या पीले रंग की आड़ी पतली खंड पट्टियाँ होती हैं। ये हवलदारी के फीते-सी होती है और शरीर के अग्रभाग में अग्रवर्ती दिशा में निर्देशित होती है और पीछे न्यूनाधिकतः आड़ी होती हैं। बदन के बगल में वे फैली होती हैं। सिर पर चार खण्ड-पट्टियाँ होती हैं। एक तो थूथन की चोटी पर जो सदा स्पष्ट ही नहीं होती, दूसरी आँख के सामने, तीसरी आँख के पीछे और चौथी दूज के चाँद या हँसिया के आकृति की पिछले सिर पर होती है। दो पिछली खण्ड-पट्टियाँ धब्बों की शृङ्खला से रचित होती हैं। शरीर का अधोतल सफेद-सा होता है जिस पर पतली काली या भूरी आड़ी-सी पट्टियाँ होती हैं। उदरतलीय शल्कों के किनारे तक ही रंग फैला होता और पीठ के काले रंग की स्थिति के अनुरूप होता है

पिछले भाग तथा पूछ पर गहरे रंग की चित्तियों की मात्रा बढ़ती है और उसे पूर्ण आच्छादित कर सकती है।

आयु-वृद्धि पर चित्रण मिटने लगते हैं। सिर और अग्र शरीर से वे बिल्कुल ही मिट जाते हैं जिससे उनका रंग प्रायः भूरा या जैतूनी हो जाता है। बदन के पिछले भाग में खण्ड पट्टियों के कुछ चिन्ह बचे ही रह जाते हैं जिसमें काली किनारी रह सकती है या मिट जाती है। पूँछ सदा ही पूर्ण काली या जैतूनी रह सकती है, जिसमें शल्कों के किनारे काले होते हैं।

नागराज की लम्बाई १५ फुट से कदाचित ही अधिक होती है। पूँछ पूरे बदन की लम्बाई का पंचमांश होती है।

नागराज का प्रसार दक्षिण भारत से लेकर हिमालय तक है। दक्षिण भारत में उत्तर पूर्व को छोड़कर इसका प्रसार क्षेत्र पर्वतीय भागों तथा उनके निकटवर्ती स्थलों में है। नीलगिरि तथा हिमालय में ६०० फुट की ऊँचाई तक पाया गया है। पाकिस्तान में, लाहौर में तथा ढाका में भी पाया गया है। यह मध्य भारत में नहीं पाया जा सका है। इसे कहीं भी बहु प्रसारित नहीं पाया जाता। किन्तु उत्तर पूर्व भारत में उल्टी बात है। यह बंगाल, बिहार और उड़ीसा में प्रायः मैदानों में पाया जाता है। यह कहीं जङ्गल में पाया जाता है और कहीं खुले मैदानों में ही होता है। यह पानी का इच्छुक होता है। वृक्ष पर सरलता से चढ़ सकता है। इसको दिवाचारी पाया जाता है। सर्पों को अपना मुख्य आहार बनाता है जिनमें निर्विष और विषधर दोनों ही प्रकार के हो सकते हैं।स्वजातीय सर्पों को खा लेने में भी इसे हिचक नहीं होती। दो उदाहरण ऐसे मिले हैं जिसमें नागराज द्वारा अजगर पर भी आक्रमण हुआ पाया गया है। सरटों में केवल वेरानस प्रजाति को ही सर्पों द्वारा अखाद्य पाया जाता है,

परन्तु ऐसे नमूने हैं जिनमें नागराज उसे भी आहार बनाता है। लंदन की एक जंतुशाला में तो एक नागराज ऐसा था कि केवल इसी सरट को आहार बनाता था। अन्य कुछ भी पदार्थ नहीं खाता था।

नागराजों के आठ फुट और पौने तेरह फुट लंबे जोड़ों को जोड़ा खाते देखा गया है। २१ से लेकर ४० तक अंडे दिये जाते हैं। घास-पात की ढेरी का घोंसला बना कर अंडे दिये जाते हैं। मादा उनकी रखवाली करती है। नर भी कुछ दूर पर रह कर रखवाली करता है। घोंसले में मादा अंडों के ऊपर गेंडुली बनाकर बैठती है। अप्रैल, मई और जून में अंडे दिखाई पड़ते हैं। उनसे उत्पन्न शिशु की लम्बाई २० या २१ इंच होती है।

करैत (बंगेरस)

करैत साँप बंगेरस प्रजाति के कहे जाते हैं। नाग की प्रजाति प्रजानाजा (नैया) कहलाती है। प्रवाल सर्प की प्रजाति कैलोफिस है। उन प्रजातियों में पृथक-पृथक रूप की जातियाँ है। परन्तु कुछ गुणों या लक्षणों से वे एक-एक श्रेणी में रखी जाती हैं। इन तीनों प्रजातियों को एक वंश के अन्तर्गत माना जाता है।

करैत या बंगेरस प्रजातीय सर्पों में विषदन्त के पीछे २ से लेकर ४ तक अन्य छोटे दाँत होते हैं। सिर गर्दन से स्पष्ट नहीं होता। सिर के पट्टक साधारण होते हैं। नासा पार्श्वीय पट्टक नहीं होता। नेत्र मध्यम या छोटे और पुतली गोल होती है। शल्क चिक्कणतलीय होते हैं जिनकी १३ से लेकर १५ तक पंक्तियाँ होती हैं। पृष्ठवंशीय पंक्ति यथेष्ट बड़ी होती है। पूँछ मध्यम होती है। पुच्छतलीय पट्टक इकहरे (एकाकी) या उनमें से कुछ द्विखंडीय होते हैं। इनसे नागों

का यह भेद होता है कि नागों की तरह इनके शल्क तिरछी पंक्तियों में नहीं होते ।

शल्कों का अत्यन्त चिक्कड़ रूप करैतों की एक उल्लेखनीय विशेषता है । इनकी आँख में यह विचित्रता होती है कि अक्षपटल रंगीन नहीं होता इसलिए जीवित रूप में पुतली देखी नहीं जा सकती ।

करैत साँप शान्त और अनाक्रामक होते हैं । बहुत छेड़ने पर ही काटते हैं । पकड़े जाने पर एक या दो कुंडली बनाकर मुँह उसके अन्दर छिपा लेते हैं। छड़ी से खोदने पर तनिक-सा हिलकर वे मुँह को फिर कुंडली में ही छिपा लेते हैं ।

करैतों का प्रसार प्रायः खुले स्थानों में या कम ऊँचाई के स्थलों में ही होता है । तीन-चार हजार से ऊँची जगहों पर नहीं मिलते । ये खेतों और बस्तियों में प्रायः पाये जाते हैं । इनका आहार सर्प (निर्विष तथा विषधर) मुख्य हैं । छोटे स्तनपायी, छिपकली, मेढक और मछली भी खाते हैं ।

पट्टित करैत

इसका प्रसार-क्षेत्र भारत में उत्तर-पूर्व भाग, हैदराबाद, उत्तर प्रदेश, बिहार, उड़ीसा और गोदावरी तथा महानदी की घाटियों में पाया जाता है ।

इस सर्प के शरीर पर सर्वाङ्गतः १५ शल्क-पंक्तियाँ होती हैं । रीढ़ के शल्यवत् उद्वर्धनों के द्वारा निर्मित एक प्रमुख कूबड़ पीठ और पूँछ पर बना होता है । पूँछ का अन्त कुँद सिरे रूप में होता है और वह सिरे पर फूली-सी होती है । उदरतलीय पट्टक २००-२३४ तथा पुच्छतलीय २३-३९ होते हैं । इसके बदन पर एकान्तर

रूप की काली या नीली लाल मिश्रित काली और पीली या लाल-

चित्र ४—पट्टित करैत के सिर का चित्र। पहला—सामने का दृश्य। दूसरा—बगल से दृश्य। तीसरा—निचले तल का दृश्य।
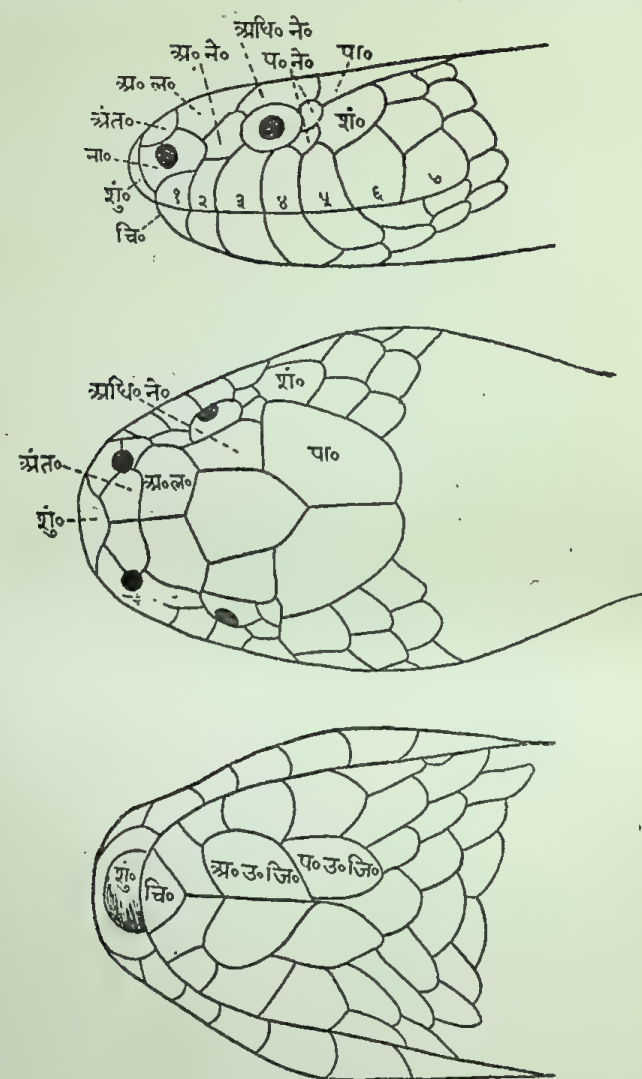
पीली पट्टियाँ होती हैं। काली पट्टियों की चौड़ाई अंतर्वर्ती पृष्ठभूमि

के बराबर या कुछ अधिक होती है। गर्दन के पिछले भाग से लेकर आँखों के मध्य सिर तक एक काला धब्बा होता है, जिसके दोनों ओर पीली किनारी होती है। सिर का शेष ऊपरी भाग भूरा होता है जिस में पीले रंग की चित्तियाँ होती हैं। कभी भी काली पट्टियाँ नीचे तक पूरी नहीं होतीं। इस सर्प को थाईलैंड में त्रिकोणीय सर्प कहते हैं।

इस सर्प की पूरी लम्बाई ७२ इंच होती है। इससे बड़ा आकार दुर्लभ ही है। एक सर्प ८१ इंच लम्बा पाया गया था।

पट्टित करैत के काटने से एक बैल के बीस मिनट में ही मर जाने का उल्लेख मिलता है। किन्तु इसके विपक्ष प्रत्यक्ष परीक्षणों द्वारा इसके विष की शक्ति कोबरा के विष से सात गुने से लेकर चौदह गुने तक कम पाई गयी है। इसलिए यह कहना भी कठिन है कि इसके काटने पर मनुष्य की मृत्यु हो सकती है या नहीं।

उत्तर-पूर्वी हिमालय करैत

यह करैत पूर्वी हिमालय (४ दार्जिलिंग, सिक्किम), आसाम की खासी पहाड़ियों और कप्पर (आसाम) में पाया जाता है। बदन पर पूरी लम्बाई में १५ शल्क-पंक्तियाँ होती हैं। उदरतलीय पट्टक २२०-२३७ तथा पुच्छतलीय ४४-५१ होते हैं जो सब के सब द्वि-खंडीय या जोड़े होते हैं या कुछ अंतिम पट्टक एकाकी (अखंड) भी हो सकते हैं।

इसके शरीर का रंग ऊपरी तल पर काला या बहुत ही गहरा भूरा होता है, जिस पर श्वेत या धुँधली पीली-सी आड़ी लकीरें या पतली खंड पट्टियाँ होती हैं जो पीठ पर धब्बों की पंक्ति द्वारा बनी होती हैं। अग्रवर्ती खंड पट्टियाँ कोणीय और अग्र निर्देशित होती

है। नीचे वह लकीर चौड़ी बन जाती है और पेट पर चौड़ी पट्टी बनाती है। थूथन पर एक श्वेत रेखा होती है। प्रत्येक पार्श्व में ललाटीय पट्टक से लेकर मुख के कोण के पीछे तक एक वक्र रेखा होती है। एक तीसरी रेखा पश्च नेत्रीय पट्टक से लेकर ओठ तक होती है।

नर के बदन की पूरी लम्बाई ५६ इंच और पूँछ की लम्बाई लगभग ७ इंच होती है। मादा के बदन की लम्बाई ४० इञ्च होती है। यह साँप बहुत कम पाया जाता है।

साधारण भारतीय करैत

इस सर्प का प्रसार हैदराबाद के उत्तर सारे भारत में है। इसके शरीर पर १५ से लेकर १७ तक शल्क-पंक्तियाँ होती हैं। उदरतलीय पट्टक १९४-२३४ तथा पुच्छतलीय पट्टक ४२-५२ होते हैं।

इसके शरीर का ऊपरी तल नीलापन युक्त काला होता है जिस पर पतली श्वेत आड़ी खंड-पट्टियाँ होती हैं जो प्रायः जोड़े रूप में व्यवस्थित होती हैं। अग्र भाग में वे बहुत कम प्रदर्शित होती हैं, वे बिल्कुल लुप्त भी हो सकती हैं। शिशु में पट्टियाँ पूर्ण होती हैं। वयस्कों में वे केवल धब्बों की शृङ्खला-सी बनी ही रह जाती हैं। प्रायः पृष्ठवंशीय क्षेत्र में एक बड़ा धब्बा रहता है। बदन की दूसरी ओर पट्टियाँ चौड़ी होना आवश्यक नहीं। प्रायः एक श्वेत अग्र नेत्रीय धब्बा पाया जाता है। ऊपरी ओठ और निम्न भाग श्वेत होते हैं।

रंगीन चित्रण के दो नमूने हो सकते हैं। एक में आड़ी खंड पट्टियाँ पतली होती हैं। बदन के पार्श्व भाग में अधिक फैली। उनकी

चौड़ाई या तो बिल्कुल ही नहीं बढ़ती या बहुत ही कम बढ़ती है। पृष्ठवंशीय धब्बे नहीं होते।

दूसरे रूप में आड़ी खंड पट्टियाँ सदा प्रमुख होती हैं और बदन के पार्श्व भाग में अधिक चौड़ी बनी होती हैं। एक पृष्ठवंशीय धब्बा अवश्य रहता है। उनसे कुछ भिन्न रंग भी होते हैं।

साधारण भारतीय करैत ४८ इंच लम्बा होता है। पूंछ ६ इंच लम्बी होती है। ५ फुट लम्बे नमूने भी उल्लिखित हैं। दक्षिण भारत की अपेक्षा उत्तर भारत में यह बड़ा होता है। गंगा की घाटी के दक्षिण केवल इस जाति के ही करैत पाये जा सकते हैं। यह मैदानी भागों में रहता है। ५००० फुट की ऊँचाई पर अलमोड़ा में भी पाया जाता है।

काला करैत

एक तो तितलौकी, वह भी चढ़ी नीम पर। उसी तरह एक तो करैत का अर्थ ही काला होता है। परन्तु विद्वत्ता में अग्रणी होने के कारण अंग्रेज प्रभुओं ने इसमें भी काला विशेषण जोड़ कर नाम रख दिया। इस लिए इसे स्वीकार कर लिया जा सकता है।

इस साँप का ऊपरी तल एक समान ही सर्वाङ्ग काला या आसमानी काला होता है। निम्न तल श्वेत होता है। पुच्छतलीय पट्टकों तथा उदरतलीय पट्टकों के सीधे तल पर न्यूनाधिकतः स्पष्ट गहरे रूप की बुंदकियाँ होती हैं।

बदन की लम्बाई ४८ इंच और पूँछ की लम्बाई ५½ इंच होती है।

यह सर्प पूर्वी हिमालय (दार्जिलिङ्ग) और आसाम में डिब्रूगढ़, सदिया, सिवसागर तथा गारो पहाड़ियों में पाया जाता है।

शरीर पर पूर्णांतः १५ शल्क-पंक्तियाँ होती हैं। उदरतलीय पट्टक २१६-२३१ तथा पुच्छतलीय ४६-४६ होते हैं।

न्यून कृष्ण करैत

इस सर्प का रंग कृष्ण करैत-सा ही होता है। बदन की पूरी लम्बाई (नर की) ४१ इंच और पूंछ की लम्बाई ५ इंच के लगभग होती है।

इसके बदन पर पूर्णांतः २५ शल्क-पंक्तियाँ होती हैं। उनमें पृष्ठवंशीय शल्क-पंक्ति नहीं होती या बहुत कम बड़ी होती हैं और मध्यवर्ती शरीर पर लम्बाई से चौड़ाई अधिक नहीं होती। वे अन्य निकटवर्ती शल्कों की आकृति के ही होते हैं।

इस सर्प का प्रसार बंगाल (पाकिस्तान) में जलपाईगुड़ी, रङ्गपुर और दार्जिलिङ्ग तथा आसाम में डिब्रूगढ़ में पाया जाता है। कृष्ण करैत से मिलता-जुलता होने के कारण इसके प्रसार का क्षेत्र ठीक नहीं बताया जा सकता।

वाल का करैत

यह करैत अपने शोधकर्ता विद्वान के नाम पर ही वाल का करैत कहलाता है।

इस सर्प का रङ्ग ऊपरीतल पर आसमानी काला होता है। उसमें पतली श्वेत आड़ी खंड पट्टियाँ होती हैं जो ६५-८० की संख्या में होती हैं और छोटे धब्बों की, शृङ्खला से बनी होती हैं। ऊपरी ओठ और निचले भाग श्वेत होते हैं। पूँछ के निचले तल पर भूरे रङ्ग का छींटा होता है।

इसके बदन की पूरी लम्बाई ६५ इंच पूँछ की लम्बाई ७ इंच तथा मादा में पूरी लम्बाई ६० इंच तथा पूँछ की लम्बाई ७ इंच

होती हैं। इस साँप के नमूने फैजाबाद, उत्तर प्रदेश, मिदनापुर (बंगाल), तथा पूर्णिया और गया (बिहार) में मिले हैं।

बिब्रोन का प्रवाल सर्प

इस सर्प की विशेष पहचान यह पाई जाती है कि अग्र ललाटीय पट्टक तृतीय ऊर्ध्वोष्ठीय पट्टक से संस्पर्शी होता है। शेष लक्षण कैल्लोकिस के होते हैं जो इस प्रजाति के अन्य सब जातियों के प्रवाल सर्पों में पाये जाते हैं। नागराज की तरह इस जाति में भी शंखिका या कनपटीय पट्टक पंचम, षष्ठ और सप्तम ऊर्ध्वोष्ठकीय पट्टकों से संस्पर्शी होते हैं किन्तु एक विशेष अंतर यह होता है कि नागराज में पुच्छतलीय पट्टक पुच्छीय आधार स्थल पर अखंड होते हैं, परन्तु इस प्रवाल सर्प में सारे पुच्छीय पट्टक विभक्त होते हैं।

अन्य सहायक लक्षण भी होते हैं कि अग्र ललाटीय पट्टक अन्तर्नासा, पश्चनासा, तृतीय ऊर्ध्वोष्ठीय, नेत्र, अधिनेत्रीय और ललाटीय पट्टक से संस्पर्शी होते हैं। पहला शंखिका पट्टक पञ्चम, षष्ठ तथा सप्तम् (या कभी-कभी चतुर्थ ऊर्ध्वोष्ठीय से भी) ऊर्ध्वोष्ठीय तथा सप्तम् अधिऊर्ध्वोष्ठीव से संस्पर्शी होता है।

चतुर्थ निम्नोष्ठीय पट्टक अपनी पंक्ति में सबसे बड़ा होता है और तीन पीछे के शल्कों से संस्पर्शी होता है। पूरे शरीर में १३ शल्क पंक्तियाँ होती हैं। गुदाद्वारीय पट्टक अखंड होता। यह जाति दुर्लभ-सी है। पश्चिमी घाट से लेकर कुर्ग तक इसके नमूने पाये गये हैं। यह सर्प दो फुट या उससे अधिक बड़ा होता है। इसके शरीर का ऊपरी तल लाल रंग से लेकर गहरे नीलारुण मिश्रित भूरा तक होता है, अधोतल लाल होता है। ऊपर काली आड़ी पट्टियाँ होती हैं जो कभी-कभी उदर तक फैली पाई जाती हैं। सिर का अग्रभाग ऊपरी तल पर काला होता है।

मैकलिलैंड प्रवाल सर्प

अन्य प्रवाल सर्पों की कैलोफिस प्रजाति में ही यह जाति भी है। अन्य जातियों से इसका भेद करने के लिए तीन लक्षणों को साथ पाया जाता है। पहला-गुदादेशीय (गुदा द्वारीय) पट्टक द्विखंडीय होता है। दूसरे ऊर्ध्वोंष्ठीय पट्टक सात होते हैं। तीसरा एक मात्र शंखिका पट्टक होता है और केवल पाँचवें तथा छठें ऊर्ध्वोंष्ठीय पट्टक का संस्पर्शी होता है। इन तीनों लक्षणों को एक साथ देखने पर ही प्रवाल सर्प इस जाति का माना जा सकता है। अन्य गौण लक्षण भी हैं। अग्र ललाटीय पट्टक अंतर्नासा, पश्चनासा, अग्रनेत्रीय, अर्ध-नेत्रीय तथा ललाटीय को स्पर्श करता है। इस प्रवाल सर्प के पूरे बदन पर १३ शल्क-पंक्तियाँ होती हैं। अधोपुच्छीय पट्टक पूरे भाग में विभक्त होते हैं।

इस सर्प का प्रसार हिमालय में कसौली (पंजाब) से लेकर नेपाल, सिक्किम और आसाम में खासी पहाड़ियों में है।

इसके बदन की पूरी लंबाई २ फुट ७½ इंच पाई गई है। बदन के रंग-भेद के चार रूप या स्थानीय भेद पाये जाते हैं। एक भेद में बदन लाल होता है। धड़ पर १६ से लेकर २६ तक काली आड़ी पट्टियाँ और पूँछ पर तोन चार पटिट्याँ होती हैं। ये पट्टियाँ पतली और उदर को पूरी तरह घेरे होती हैं। उन पर लाल मिले पीले या नीले रंग की किनारी होती है। उदर का रंग गंधकी पीला होता है और प्रत्येक पट्टी के बीच में एक बड़ा काले रंग का बेडौल धब्बा बना होता है। यह खासी पहाड़ी में शिलांग के निकट-वर्ती स्थलों में पाया जाता है।

दूसरा भेद लाल या भूरा होता है। २३ से लेकर ३२ तक

काली पट्टियाँ या अँगूठियाँ होती हैं जिनमें से मध्य शरीर के निकट कई एक अधूरी होती हैं। पीठ पर इन चारों भेदों में सिर काला होता है और सिर की पूरी चौड़ाई में एक श्वेत पट्टी होती है। एक खड़ी काली लकीर होती है। नेपाल और दार्जिलिंग में पाया जाता है। तीसरे भेद में काली पट्टी या पृष्ठीय रेखा नहीं होती। इसका रंग ऊपर लाल होता है और पीठ पर ३० छोटे काले धब्बे धब्बे होते हैं। उदर धुँधला पीला होता है। बीच में बेडौल काले छोटे होते हैं। नागा पहाड़ियों और मनीपुर में पाया गया है। चौथा रूप कसौली में मिला है। काली अँगूठी नहीं होती, पीठ पर एक अनवच्छिन्न चौड़ी काली पट्टी होती है। इन चारों भेदों में सिर काला होता है और सिर की चौड़ाई में एक सफेद पट्टी होती है।

कृश प्रवाल सर्प

सहप्रजातीय सर्पों से विभेद करने के लिए इसमें दो लक्षण साथ पाये जाते हैं। इस जाति में गुदादेशीय पट्टक विभक्त होता है और छः ऊर्ध्वोष्ठीय पट्टक होते हैं।

इसमें अन्य गौण लक्षण निम्न हैं :—अग्र ललाटीय अंतर्नासा, पश्चनासा, अग्रनेत्रीय, अधिनेत्रीय तथा ललाटीय को स्पर्श करते हैं। एक शंखिक होता है जो पाँचवें और छठे ऊर्ध्वोष्ठीय को स्पर्श करता है।

इस सर्प का प्रसार दक्षिणी भारत (बंबई, धारवार, मलाबार, कोयम्बटूर, अन्नामलय, नागपुर) तथा बंगाल में पाया जाता है। यह दुर्लभ जाति ही है।

इसके बदन का रंग पीलापन युक्त भूरा होता है। सिर और

गर्दन काली होती है। पूँछ पर दो काली अँगूठियां होती हैं। उदर मूँगे समान हल्का गुलाबी होता है।

यह सर्प बड़े पतले आकार का होता है। इसकी लंबाई १२ इंच तक होती है।

साधारण भारतीय प्रवाल

इस प्रवाल सर्प में बिब्रोनी प्रवाल सर्प की तरह शंखिका पाँचवें, छठें और सातवें ऊर्ध्वोष्ठीय पट्टक को स्पर्श करता है किन्तु गुदादेशीय पट्टक में यह भेद होता है कि बिब्रोनी जाति में अखंड और इस जाति में द्विखंडीय या विभक्त होता है। सभी अधोपुच्छीय पट्टक इन दोनों ही जातियों में विभक्त होते हैं। बदन पर ११ शल्क-पंक्तियाँ होती हैं।

साधारण भारतीय प्रवाल ४ फुट लंबा होता है। इसके सिर और गर्दन का रंग काला होता है किन्तु पिछले सिर पर (पश्चादिका पट्टक) पीलेपन रंग की तिरछी लकीर होती है। बदन का ऊपरी तल नीलारुण भूरा, लाल मिला भूरा या लाल होता है जिस पर ३ से ५ तक लंबवर्ती शृंखलाओं में धब्बे होते हैं जो कुछ नमूनों में संयुक्त होकर लकीर बनाये होते हैं। उदर का रंग एक समान लाल होता है।

इस सर्प का प्रसार पश्चिमी घाट की पहाड़ियाँ में त्रावनकोर तक तथा नीलगिरि, अन्नामलै और गंजाम की पहाड़ियों में भी है।

भारतीय गर्त्त मंडली

गर्त्त मंडली सर्पों में पूँछ गोल होती है और मुख के पार्श्व में नाक और आँख के मध्य के स्थान में, जिसे मुख के पट्टकों के वर्णन में नासापार्श्वीय नाम दिया गया है और मनुष्य में नासामंच के

पार्श्व के नेत्रों के नीचे के भाग के अनुरूप माना जा सकता है, एक स्पष्ट गर्त्त या गड्ढा होता है। इसलिये इसको गर्त्त मंडली नाम दिया गया है। मंडली सर्प दूसरे होते हैं जिनका पृथक वंश ही माना जाता है। गर्त्त मंडली सर्पों का उनसे पृथक ही एक स्वतंत्र वंश होता है।

भारतीय गर्त्त मंडली प्रायः पूर्णतः पर्वतीय क्षेत्रों के निवासी होते हैं और डेढ़ हजार फुट से लेकर १० हजार फुट की ऊँचाई तक पाये जाते हैं।

मलाबार गर्त्त मंडली

इस सर्प के ऊपरी जबड़े के पार्श्व (ऊर्ध्वोष्ठीय) पट्टकों में द्वितीय पट्टक चेहरे के गर्त्त का अग्र भाग निर्मित करता है जो प्रायः ऊर्ध्व नासा पट्टकों के मध्य एक छोटा पट्टक या शल्क होता है। सिर तथा बदन के ऊपर शल्क प्रायः न्यूनाधिक रूप में उद्वर्धन तल (उरः कूट) युक्त होते हैं। शरीर पर शल्कों की २१ पंक्तियाँ होती हैं। उदरतल में १४८-१५८ तथा पुच्छतल में ५१-५३ शल्क होते हैं। शरीर की पृष्ठभूमि पीलापनयुक्त ही होती है जिसमें बड़े बहु-भुजीय काले धब्बे पृष्ठीय पंक्ति रूप में होते हैं जिसमें प्रत्येक धब्बा पुनः विभाजित या पीले रंग द्वारा बहुरंजित होते हैं। प्रौढ़ सर्पों में सिर का ऊपरी भाग काले रंग द्वारा चित्रित और अल्पायु सर्पों में एक रङ्ग का हरा-सा होता है। आँख की पिछली किनारी से मुख के कोण तक एक काली या भूरी पट्टी फैली होती है। आँख के ऊपर दो या एक आड़ी काली रेखा भी बनाती है। उदरतल पीलापनयुक्त हरा होता है जिसमें पार्श्ववर्ती रूप में उसके पीले और हरे धब्बे होते हैं। पूँछ काली होती है जिस पर पीले और हरे धब्बे होते हैं।

अल्पायु सर्पों की पहचान गहरे रङ्ग की कपोलीय रेखा से हो सकती है। किन्तु अन्य सब धब्बे स्पष्ट ही होते हैं। पृष्ठभूमि का रंग लाल युक्त जैतूनी होता है। पूँछ में सफेद छोर होती है।

इसके एक नमूने की लम्बाई २७ इञ्च और गोलाई (परिधि) पौने तीन इञ्च पाई गई थी। पूँछ साढ़े तीन इञ्च थी। यह जाति पश्चिमो घाट और कृष्णा के दक्षिण पहाड़ी भागों में अन्नामलय पर्वत में पाई जाने के कारण अन्नामलोनिस कहलाती है। यह छोटा मंडली या ट्रिमरेस्यूरस प्रजाति की ही जाति है।

इरिथ्यूरस गर्त्त मंडली

यह एक गर्त्त मंडली या छिद्र मंडली है जो बंगाल, बिहार सिक्किम और निम्न हिमालय में पाया जाता है। इसके ऊर्ध्वोष्ठीय पट्टकों में द्वितीय पट्टक चेहरे के गर्त्त (गड्ढे) का अग्र भाग बनाता है। बदन पर २३ से लेकर २५ तक शल्क पंक्तियाँ होती हैं, जो धड़ और पूँछ पर खड़ी फैली होती हैं। सिर की चोटी और कपोल पर के शल्क (पट्टक) छोटे और तीव्र उरः कूट युक्त होते हैं। उदर-तलीय १६४-१६६ और पुच्छतलीय ३४-६० होते हैं। इसके बदन के ऊपरी तल का रंग घास समान हरा होता है पूँछ का रंग पीलापनयुक्त हरा होता है। न्यूनाधिकतः कुछ धुँधली पीली-सी रेखा शल्कों की (पार्श्ववर्ती) पंक्ति के साथ-साथ बनी होती है। कभी-कभी वह नहीं भी होती। अधोतल हरापनयुक्त सफेद होता है। साधारण रंग प्रायः हरा होता है। कभी-कभी पार्श्व में कलौंछ रंग के बड़े धब्बे होते हैं। पार्श्व रेखा या तो यथेष्ट विकसित होती है और उस पर श्वेत किनारी होती है और नीचे मूँगे-सा हल्का लाल रंग होता है या वह बिल्कुल ही नहीं होती। पूँछ ऊपरी तल पर

धुँधली लाल रंग की, शरीर की कुल लम्बाई का छठा भाग बराबर होती है।

इस साँप के एक नमूने की लम्बाई तीन फुट और परिधि (गोलाई) चार इञ्च पाई गई है।

एक रूप में उसके ओंठ और ठुड्डी का रंग श्वेत होता है। पार्श्व रेखा श्वेत होती है जिसमें नीचे नीले, लाल या हरे से रंग की किनारी या कगर होती है। शरीर का रंग घास-सा हरा होता है। पार्श्व उदरतल पर कुछ हल्का होता है। वयस्क मादा में श्वेत ओंठ या रेखा नहीं पाई जाती। इस जाति में ऊर्ध्व नासा शल्कों के मध्य प्रायः अकेला पट्टक नहीं होता। कुछ विद्वानों का मत है कि यह इकहरा पट्टक कभी-कभी छोटे रूप में पाया जाता है। शरीर पर के शल्क तीव्र उभाड़ तल या उरः कूट युक्त होते हैं तथा उनकी २१ से २३ तक खड़ी पंक्तियाँ साँप के बदन पर होती हैं। यह सर्प ३३ इञ्च तक लम्बा होता है और गंगा के डेल्टा में पाया जाता है। यह निकोबार द्वीप में भी पाया जाता है।

दीर्घचिन्हित गर्त्त मंडली

इस सर्प का ऊर्ध्वोष्ठीय द्वितीय पट्टक मुखतलीय (चेहरे के) छिद्र या गर्त्त का अग्र भाग निर्मित करता है। नासिका के पीछे दो छोटे पट्टक होते हैं। कभी-कभी इसके नीचे एकाकी पट्टक ही होता है। सिर पर के शल्क चिकने होते हैं। बदन पर के शल्कों पर हल्के तलीय उभाड़ होते हैं। शल्कों को २३ खड़ी पंक्तियाँ होती हैं। उदरतलीय शल्क १३७–१४१ और पुच्छतलीय ४१ होते हैं। अधिनेत्रीय शल्क (भौं) बहुत बड़े होते हैं। रंग विविध होते हैं। एक नमूने में धुँधला भूरा पाया जाता है। जिसमें बड़े चौकोर गहरे भूरे धब्बों की एक पृष्ठीवंशीय पंक्ति होती है।

पार्श्व में छोटे कलौंछ धब्बों की पंक्ति होती हैं। कपोल पर धुँधली रेखा होती है। उदर तल गहरे रंग का चितकबरा होता। दार्जिलिंग से पाये एक नमूने में जो बड़े आकार के नर साँप का था शरीर का रंग गहरा भूरा या प्रायः कालापन युक्त खाकी रंग का पाया जाता है जिसमें पृष्ठवंशीय पंक्ति में आयताकार धब्बे पाये जाते हैं। गर्दन पर घोड़े की नाल-सा चिन्ह पाया जाता है, जो पीलेपन या सफेद से रंग का है। यह निम्न हिमालय, दार्जिलिङ्ग-सिक्किम, नेपाल, खसिया की पहाड़ी, और दक्षिण भारत में नीलगिरि तथा अन्नामलै पहाड़ी में पाया जाता है।

इसके एक नमूने की लम्बाई १९ इंच, गोलार्द्ध ३½ इंच तथा पूँछ की लम्बाई ३ इंच पाई गई है।

ऐंडसोनी गर्त्त मण्डली

इस सर्प में रेखीय उभाड़ वाले शल्कों की पंक्तियाँ पाई जाती हैं। अधोतलीय १२२, और पुच्छतलीय शल्क ५६ पाये जाते हैं। किसी नमूने में पुच्छतलीय शल्क ७१ भी पाये जा सके हैं। हनु-ऊर्ध्वोष्ठीय शल्क अग्रिम नेत्रीय गड्ढे की अगली किनारी बनाता है। ऊर्ध्वनासा शल्क एक एकाकी शल्क द्वारा प्रथक होते हैं। बदन के ऊपरी तथा निचले तल का रंग एक समान ही प्रचुर भूरा होता है। उदर तथा पार्श्व में प्रमुख रूप से श्वेत धब्बे होते हैं। यह सर्प आसाम में पाया जाता है। इसकी लम्बाई १९ इंच और गोलार्द्ध (परिधि) दो इंच पाई गई है। पूँछ की लम्बाई पौन इंच थी।

नाल (अश्व-पादत्राण) गर्त्त मंडली

स्ट्रिगेटस या नाल गर्त्त मंडली भी छुद्र गर्त्त मंडली प्रजाति का है। मुखतलीय गर्त्त के अग्रभाग की रचना करने वाला पट्टक या

शल्क द्वितीय ऊर्ध्वोष्ठीय शल्क से पृथक् होता है। उर्ध्वनेत्रीय या भ्रू शल्क पतला होता है। मुखाग्रीय या चंचुकीय पट्टक के पीछे कोई बड़ा पट्टक नहीं होता। सिर का पूर्ण ऊपरी तल छोटे और लगभग चिकने शल्कों से मढ़ा होता है। ऊर्ध्वोष्ठीय शल्क पीछे क्षुद्रतर आकार के बने होते हैं। शल्क स्पष्टतः तलीय उभाड़ युक्त (उरः कूट) होते हैं। उनकी २१ पंक्तियाँ बदन पर खड़े रूप में फैली होती हैं। उदरतलीय शल्क १३६-१४२, पुच्छतलीय ३१-४० होते हैं। पूँछ हल्के रूप की ग्राही होती है। उसका अंत एक क्षुद्र शल्क रूप में होता है।

इस सर्प का एक नमूना साढ़े चौदह इंच लम्बा पाया गया है, जिसकी मोटाई (परिधि) सवा इंच है। इसका रङ्ग भूरा है। उस पर अधिक गहरे रङ्ग के बेडौल पृष्ठवंशीय धब्बों की पंक्ति होती है। गर्दन पर घोड़े के नाल समान चिन्ह बना पाया जाता है। आँखें और ऊर्ध्वहन्वग्र गर्त्त हनु के आधे भाग के गड्ढे के नीचे एक त्रिभुजाकार गहरे रङ्ग का धब्बा बना होता है।

आँख से गर्दन तक एक गहरे भूरे रङ्ग की पट्टी होती है। निचले जबड़े और उदर का रङ्ग काले धब्बों युक्त होता है। पूँछ की छोर एक शल्क रूप में समाप्त होती है। अल्पायु सर्प में वह श्वेत होती है। यह सर्प दक्षिण भारत में पश्चिमी घाट, नीलगिरि और अन्नामलै आदि में पाया जाता है। इसके एक नमूने की लम्बाई एक फुट ढाई इंच और गोलाई (परिधि) सवा इंच पाई गई है।

हिमालय गर्त्त मंडली

इस सर्प का थूथन साधारण लंबाई का होता है जो लम्बे की अपेक्षा अधिक चौड़ा होता है। नाक निकली-सी होती है। चंचुकीय पट्टक तिरछा होता है और चौड़ाई की अपेक्षा अधिक ऊँचा होता

है। अग्रिम शल्क यथेष्ठ विकसित होते हैं। छोटे-छोटे पट्टक रूप में खंडित नहीं होते। आगे के ललाटीय शल्क छोटे खड़ी पंक्ति में होते हैं। बगल में गावदुम या क्रमशः पतले बने होते हैं। दोनो ही संयुक्त रूप में एक प्रकार का दूज का चाँद-सा बनाते हैं। पीछे के ललाटीय शल्क बड़े और कुछ सामने नोकीले से होते हैं और पीछे गोल से होते हैं। शीर्षतलीय और ऊर्ध्वकेन्द्रीय पट्टक अन्य छोटे मंडलियों से ही होते हैं। सिरे के पिछले भाग के (पश्चादिका) पट्टक छोटे और गोल होते हैं। पाँच ऊर्ध्वोष्ठीय पट्टक होते हैं। छठें और सातवें भी होते हैं जो कपालीय शल्कों से संयुक्त होते हैं। द्वितीय ऊर्ध्वोष्ठीय पट्टक छोटा होता है। वह चेहरे के गर्त्त के छोर की रचना में भाग नहीं लेता। तृतीय शल्क नेत्रीय गर्त्त में प्रवेश करता है। तीन बड़े कपोलीय शल्कों की शृङ्खला होती है, जिनमें दो ओठ के भाग की रचना करते हैं। इन तीनों कपोलीय शल्कों और पश्चादिका के मध्य में छोटे शल्क होते हैं।

इस सांप का शरीर साधारण लम्बाई का होता है। एक नमूना २३ इंच का नापा गया है जिसकी गोलाई सवा दो इंच थी। इसके ऊपरी तल पर तीव्र तलीय उभारों के (उरः कूट) शल्कों की २३ पंक्तियाँ होती हैं। उदरतलीय शल्क १६२-१६६ होते हैं। गुदाशल्क पूरा (समूचा) होता है। पुच्छतलीय शल्क ४३-५१ होते हैं। पूंछ में एक लम्बा शल्य छोर पर होता है। इसका रंग गहरा भूरा होता है। पीठ पर लम्बी पट्टियों समान धब्बे होते हैं। किन्तु वे पृष्ठभूमि के रंग से बहुत भिन्न नहीं होते। उनकी काली किनारी स्पष्ट होती है। उदरतल काला होता है जिसमें पीली-सी छींटें होती हैं।

एक चौड़ी कलौंछ (काली-सी) भूरी पट्टी आँख से शंखिकीय (कनपटीय) पट्टकों की शृङ्खला के साथ मुख के कोण तक फैली

होती है। इसमें ऊपर और नीचे पतली काली और सफेद किनारी होती है। प्रौढ़ों की अपेक्षा अल्पायु सर्पों में यह अधिक स्पष्ट होती है। निम्न ओष्ठीय पट्टक पीले और काले से रंगों के छोटे होते हैं।

इस सर्प का मुख्य आहार चूहे हैं। यह उत्तरी पश्चिमी हिमालय, काश्मीर और आसाम की खासी पहाड़ियों में पाया जाता है। वर्षा के बाद मार्गों में मिल जाया करता है।

ककुदनासा गर्त्त मंडली

यह साँप दक्षिण भारत में पश्चिमी घाट की पहाड़ियों (करवार, बेलगाँव आदि) अन्नामलै, मलाबार में पाया जाता है। शरीर की लम्बाई १६ इञ्च तक पाई गई है जिसमें दुम की लम्बाई ढाई इञ्च थी।

इसका सिर चौड़ा, त्रिकोणीय होता है। थूथन ऊपरी तल पर अनेक क्षुद्र पट्टकों से आवेष्ठित होता है। सिर की चोटी भी प्रायः पट्टक मण्डित होती है। शरीर की लम्बाई साधारण होती है। सत्रह पंक्तियों में उरःकूटीय शल्क पाये जाते हैं। पूँछ कुछ छोटी होती है किन्तु ग्राही नहीं होती। उनका अन्त एक पुच्छतलीय शल्क में होता है। अधोतलीय शल्क १३६-१५२ और पुच्छतलीय ३१-४५ होते हैं।

इस सर्प का रंग भूरा या खाकी या लाल मिश्रित जैतूनी होता है। भूरे या काले रंग की दोहरी शृङ्खला के पृष्ठीय धब्बे होते हैं। कभी-कभी दोनों ओर के धब्बे संयुक्त होकर आड़ी पट्टी-सी बना लेते हैं। पार्श्व भाग तथा उदरतल भूरे या काले रंग की सूक्ष्म छींटों और बुंदकियों युक्त होते है। ऊपरी ओठ भूरा या काला होता है जिस पर आँख के पीछे से मुख के कोण तक एक गहरे रंग की रेखा यथेष्ट

प्रदर्शित होती है। एक गहरी रेखा के ऊपर न्यूनाधिक रूप में स्पष्ट श्वेत या श्वेताभ कनपटीय या शंखिकीय धारी होती है। वह कभी-कभी गर्दन के पार्श्व तक फैली होती है जिसमें ऊपर-नीचे खंडित भूरी पट्टियाँ होती हैं। चिबुक (ठुड्डी) और कंठ कलौंछ और भूरे से होते हैं, जिसमें पीले या खाकी रंगों की गंगा-जमुनी होती है। कभी-कभी एक समान ही रङ्ग अधिक होता है। कंठ के दोनों पार्श्व में पृष्ठीय धब्बे अत्यधिक स्थिर चिन्ह होते हैं। इन विभिन्न रङ्गों को एक ही मादा के शिशुओं में विद्यमान पाया जा सकता है। यह सर्प काराविल्ला नाम से पुकारा जाता है। इसका विषदंश उतना घातक नहीं होता, फिर भी यह बहुत भयानक माना जाता है।

भारतीय मण्डली सर्प

मंडली या पृदाकु जिन्हें गर्त्तहीन मण्डली भी लोग कह सकते हैं, एक स्वतंत्र वंश के सर्प हैं। इनमें पूँछ गोल होती है। इनकी बड़ी महत्वपूर्ण विशेषता यह होती है कि थूथन और सिर की चोटी पर बिल्कुल उसी तरह के क्षुद्र शल्क मढ़े होते हैं जैसे पीठ पर। प्रायः सारा भाग उन समानान्तर आड़े पट्टकों से घिरा मिल सकता है जिनको उदरतलीय पट्टक कहते हैं। केवल किनारे की ओर पृष्ठ-तलीय शल्कों की अंतिम पंक्ति ही अधूरे रूप में दिखाई पड़ सकती है। इनमें नासापार्श्वीय गर्त्त नहीं होता।

आराशल्क मण्डली या फुर्सा

इस सर्प का प्रसार-क्षेत्र उत्तर प्रदेश, पञ्जाब, राजपूताना, मध्य भारत आदि है। दक्षिण भारत के कुछ भाग कर्नाटक (त्रिचनापली) बम्बई (रत्नागिरी) आदि में भी पाया जाता है। दिल्ली के निकट इसे आफी कहते हैं। सिंध (पाकिस्तान) में कप्पर कहते हैं।

यह सर्प ऊपरी तल पर भूरा या भूरा मिला खाकी होता है। अधूरे चौकोर या अण्डाकार सफेद धब्बों की पंक्ति होती है। धब्बों के चारों ओर काली मिली भूरी किनारी होती है। प्रत्येक पृष्ठीय अँगूठीदार धब्बे के दोनों ओर आधी गोलाकार सफेद-सी पट्टी होती है जो एक गोल मटमैले भूरे रङ्ग के पार्श्ववर्ती धब्बे को घेरे रहती है। यह पंक्ति दोनों बगल साँप की पूरी धड़ पर लहरियादार लम्बी पट्टी-सी बनाये होती है। सिर पर एक जोड़े लम्बोतरे भूरे धब्बे काली किनारियों युक्त होते हैं जो आगे की ओर संयुक्त हो जाते हैं। आँख के नीचे एक भूरा धब्बा होता है तथा पीछे एक तिरछी चौड़ी रेखा होती है। उदरतल सफेद-सा होता है जिसमें न्यूनाधिकतः अनेक गोल भूरी चित्तियाँ होती हैं। उदरतलीय (अधोतलीय) शल्क १४६-१५४ और पुच्छतलीय २१-२६ होते हैं।

आराशल्क मण्डली भीषण तथा आक्रामक होता है। यह सदा रक्षात्मक स्थिति में रहकर आक्रमणोन्मुख रहता है। यह दोहरी कुंडली बना कर बैठ जाता है जिसके मोड़ सतत गतिशील रहते हैं। वे एक दूसरे से ज्यों-ज्यों रगड़ खाते जाते हैं, एक तीव्र खड़खड़ाहट का शब्द उत्पन्न होता रहता है जो बिल्कुल फुफकार-सा ही जान पड़ता है। किन्तु यह कदाचित फुफकार नहीं छोड़ता। दबोइया की तरह इसके भी दाँत लम्बे और मुँह में मुड़े पड़े रहने वाले होते हैं जो काटने के समय ही पेशियों की उत्तेजना से खड़े होकर विष-वमन के लिए तत्पर हो जाते हैं। सर्प का एक नमूना बाईस इञ्च लम्बा और ३ इञ्च गोलाई का पाया गया है। यह बड़ा तीव्र होता है। एक फुट उछाल मार सकता है।

दबोइया

रसेल का मण्डली या दबोइया उस श्रेणी का साँप है जिसमें

विषदंत इतने बड़े हैं कि वह उन्हें मोड़ कर रखने की व्यवस्था रखता है। इसको सीलोन में टिकपोलंगा और बङ्गाल में बड़ा उल्लू कहते हैं। इसका रङ्ग हल्का भूरा या खाकी मिश्रित भूरा होता है और सफेद अँगूठीनुमा किनारियाँ सहित बड़े काले धब्बों की तीन पंक्तियाँ होती हैं। मध्यवर्ती पंक्ति के धब्बे अण्डाकार होते हैं तथा बाहरी या अगल-बगल की पंक्तियों के धब्बे गोलाकार होते हैं। कभी-कभी इन अँगूठियों के मध्य सफेद किनारियों वाले छोटे धब्बे होते हैं। सिर के ऊपरी तल पर दोनों बगल एक पीली रेखा होती है। ये दोनों रेखाएं थूथन पर जा मिलती हैं। ऊपरी हनु के पार्श्व भाग तथा मुख के ऊर्ध्व या चँचुकीय भाग के शल्क या पट्टक पीले होते हैं जिन पर भूरी किनारी होती है। आँख के नीचे एक काली कगर का भूरा तिकोना-सा धब्बा होता है। उदर तल एक समान पीलेपन रङ्ग का और भूरे रङ्ग की नन्हीं बुंदकियों युक्त होता है।

यह सर्प सारे भारत में पाया जाता है। राजपूताना, गुजरात में विशेष पाया गया है। कुल्लू की घाटी में, हिमालय के ५००० फुट की ऊँचाई के पहाड़ों में और काश्मीर में ६००० फुट ऊँचाई तक पाया जाता है। लेकिन औसत रूप में २००० फुट से ४००० फुट ऊँचाई तक ही पहाड़ों में मिलता है।

यह सर्प विषदंत बड़े होने पर भी नाग समान भयङ्कर घातक कदाचित नहीं होता। किन्तु फिर भी यह नाग के बाद अवश्य ही अन्य सब सर्पों से अधिक घातक है। इसके काटने से मुर्गी की मृत्यु ३५ सेकण्ड से लेकर कुछ मिनटों तक में हो जाती है। कुत्ते की मृत्यु सात मिनट से लेकर कुछ घन्टों के मध्य हो जाती है। बिल्ली की मृत्यु ५७ मिनट में होती देखी गई है, घोड़ा साढ़े ग्यारह घण्टे

में मरता पाया गया है किन्तु नाग समान जल्दी इसके विष से मृत्यु नहीं होती।

विष कुछ विलम्ब से प्रभाव करने पर भी घातक रूप में प्रबल ही होता है। नाग के काटने से रक्त में थक्के जम जाते हैं। इसलिये मृत जन्तु में हृदय से बाहर करने पर रक्त थक्के युक्त पाया जाता है। परन्तु दबोइया के काटने पर मृत्यु के बाद भी रक्त में थक्का जमा नहीं पाया जाता।

दबोइया रात्रिचारी होता है किन्तु कहा जाता है कि धूप खाते बाहर बैठा पाया जाता है। कठघरों में बन्दी रूप में यह सुस्त पड़ा रहता है। छेड़ने पर ही रौद्र रूप प्रकट करता है और बड़े वेग से फुफकार छोड़ता है। जब काटने के लिए चोट करता है तो चोट बहुत शक्तिशाली होती है। इसके लम्बे, मुड़ने योग्य दाँत प्रमुख होते हैं। यह काटने पर उन दाँतों से बदन में गहरा घाव कर देता है।

दबोइया का आहार चूहे, चूहियाँ और मेढक हैं। कदाचित यह पानी में भी प्रवेश कर सकता है। वृक्षों पर चढ़ जाता पाया जाता है। इसकी भयङ्कर फुफकार बहुत निकटवर्ती जन्तु या मनुष्य के लिए काल का तत्क्षण बुलावा हो सकती है। प्रौढ़ सर्प की लम्बाई तीन-चार फुट होती है।

जलनाग

गंगासागर जल-सर्प

इस सर्प का सिर कुछ छोटा और मध्यम चौड़ाई का होता है। गर्दन और धड़ मध्यम रूप की लम्बोरी होती है। तुंडीय (ऐस्ट्रल) पट्टक बहुत ही छोटा और छोटे फंकों में खंडित होता है। इसकी बढ़ी हुई नोक निचले जबड़े के समस्थानीय गढ्डे में ठीक

बैठती है। चतुर्थ ऊर्ध्वोष्ठीय पट्टक नेत्र के नीचे होता है। चिबुकीय (ठुड्डी का) पट्टक बहुत पतला और लंबा, तथा एक परिखा (खुली नली या हल के चलने से बनी नन्हीं खाई या प्रसीता समान) या प्रसीता में स्थित होता है। अग्रिम निम्नोष्ठीय पट्टक बहुत लम्बोतरे होते हैं। कंठ पर शल्क मंडित होते हैं; पट्टक नहीं होता। नेत्र के पीछे एक पट्टक (पश्च नेत्रीय) होता है जो कभी द्विखंडीय होता है। गर्दन में शल्कों की ४८ पंक्तियाँ होतो हैं। शल्क विरले ही खपरैलवत् आरोहित होते हैं। वे षटभुजी या षटकोण होते हैं प्रत्येक में एक छोटा-सा उरःकूट होता है। उदर तल पर पट्टक नहीं होते। वे पार्श्व श्रृंखला समान या अत्यल्प ही भिन्न होते हैं। उनकी संख्या २८४-३१४ होती है। पुच्छ का अंतिम शल्क कुछ बड़ा होता है। अल्पायु सर्पों में पीठ पर चौड़ी काली आयताकार-सी पाट्टियाँ होती हैं। आयु बढ़ने पर वे धुँधली होती जाती हैं और अंत में पूर्ण लुप्त हो जाती हैं।

इसका विषदंत छोटा ही किन्तु यथेष्ट प्रमुख होता है। इसकी परिखा या प्रसीता (खुली नाली) इसकी लम्बाई का खुला भाग होती है किन्तु पूर्ण लम्बाई तक नहीं होती। बदन पार्श्वों से कुछ दबा या खड़ा होता है। उदर उरःकूटीय शल्क युक्त होता है। पूँछ चपटी और ऊपर नीचे से दबी, बिल्कुल मछली के पखनों (पक्षत)-सी होती है। नाक खड़े होते हैं। आँखें छोटी होती हैं। इस सर्प के जबड़े के एक मुर्गी के निकट लाकर उसे कटाया गया। मुर्गी सात मिनट में मर गई। साँप के मृत होने के कुछ घंटों बाद उसका जबड़ा एक मुर्गी की जांघ में बर्बस सटाया गया। विष का प्रभाव तब भी हुआ। चार घंटे में मुर्गी मर गई। इसका विष भयानक होता है। इसकी लम्बाई ३६ से ४८ इंच तक होती है। गोलाई ४ इंच होती है।

यह बंगाल की खाड़ी में और सुन्दर बन के ज्वार-भाटा के समस्त खंड में पाया जाता है।

हाइड्रोफिस स्पाइरलिस

इस सर्प का सिर मध्यम आकार और चौड़ाई का होता है। गर्दन और धड़ लंबोतरी नहीं होती। नेत्रीय कोटर के नीचे दो या तीन ऊर्ध्वोष्ठीय पट्टक होते हैं। एक पश्चनेत्रीय पट्टक होता है। अग्रिम ललाटीय पट्टक बड़ा होता है। दो जोड़े चिबुकीय पट्टक होते हैं जो एक दूसरे के सम्पर्क में होते हैं। गर्दन के चारों ओर ३१ शल्कों की श्रृंखलाएँ होती हैं। शल्क हल्के रूप में खपरैलवत आरोहित होते हैं। प्रत्येक में एक अनुकेन्द्रीय क्षुद्र उद्वर्धन (उरः कूट) होता है। बदन के उच्चतम भाग के शल्क गोल या पीछे की ओर अनुखंडित होते हैं। ऊँचाई के बराबर उनकी लंबाई होती है। उदरतलीय पट्टक निकटवर्ती श्रृंखला के शल्कों से दूने तिगुने चौड़े होते हैं। वे चिकने होते हैं। उनकी संख्या ३००० होती है। पुच्छ का अंतिम शल्क कुछ बड़ा ही होता है। धड़ पर पतली, दूर-दूर पर स्थित काले रंग की ३५ अँगूठियाँ होती हैं जो उदर तक फैली होती हैं। कभी-कभी वे पार्श्व में भंग होकर पीठ पर ही वापस आ गई होती हैं। प्रौढ़ों में सिर पर चिन्ह (धब्बे) नहीं होते। कंठ और उदर श्वेताभ होते हैं। प्रौढ़ सर्प की लंबाई छः फुट पाई गई है। बदन की गोलाई साढ़े चार इंच और पूँछ की लंबाई ६ इंच होती है। यह भारत के तटवर्ती समुद्रों में पाया है।

हाइड्रोफिस क्यानोसिंक्टा

इस सर्प का सिर मध्यम आकार और चौड़ाई का होता है। गर्दन और धड़ कुछ लंबोतरी ही होती है। आँख के नीचे प्रायः

दो ऊर्ध्वोष्ठीय पट्टक होते हैं। दो पश्चनेत्रीय पट्टक होते हैं जो असाधारणतया एक दूसरे से संयुक्त होते हैं। प्रत्येक पश्चादिका या पश्चकपालीय पट्टक के पार्श्व में दो या अधिक कनपटीय (शंखिकीय या ऊर्ध्वकपोलीय) पट्टक होते हैं। दो जोड़े चिबुकीय पट्टक होते हैं जिन में से अग्रवर्ती जोड़े एक दूसरे से स्पर्शित होते हैं। गर्दन के चारों ओर २९ से लेकर ३३ तक शल्क-पंक्तियाँ होती हैं। शल्क हल्के रूप में खपड़ैलवत् एक दूसरे पर आरोहित होते हैं। वे चतुष्कोण तथा अल्प उरःकूटित होते हैं। शरीर के उच्चतम भाग पर के तीन शल्क ऊँचे की अपेक्षा लंबे होते हैं। अधोतलीय पट्टक ३२०-३६० या ४०६–४२६ होते हैं। निकटवर्ती पंक्तियों के शल्कों के दुगुने या तिगुने बड़े होते हैं। प्रायः सभी अखंड होते हैं। लंबान में विभाजित नहीं होते। वे द्विक्षुद्रोद्वर्धनीय होते हैं। चार गुदा-द्वारीय पट्टक होते हैं जिनमें बाह्यवर्ती पट्टक अंतर्वर्तियों से बड़े होते हैं। पुच्छान्तीय शल्क छोटा ही या मध्यम आकार का होता है।

इसके बदन के पृष्ठतल का रंग हरापन मिला जैतूनी और पार्श्व तथा उदर तल पीताभ (पीला-सा) होता है। धड़ पर ५० से लेकर ७५ तक काले रंग की आड़ी पट्टियाँ होती हैं जो पीठ पर सबसे चौड़ी होती हैं और पृष्ठभूमि के मध्यवर्ती स्थल से अधिक चौड़ी होती है। पार्श्व में वे पतली पड़ जाती हैं। आयु बढ़ने पर कभी-कभी वे पार्श्व और उदर तल पर बिल्कुल लुप्त हो जाती है या उदरतलीय पट्टकों पर अस्तव्यस्त धब्बों के रूप में ही प्रदर्शित रहती हैं। शिशु और अर्द्ध प्रौढ़ों में वे शरीर को चारों ओर से घेरे अँगूठीनुमा, बनी होती हैं और कभी-कभी संयुक्त होकर उदरतलीय पट्टक की पूरी पंक्ति में एक काली पट्टी समान दिखाई पड़ती हैं। सिर का रंग ऊपरी तल पर हरापन युक्त जैतूनी, और पार्श्वों में

पीला-सा होता है। शिशुओं में काले रंग में पीले रंग गंगा-जमुनी समान मिश्रित भाग होते हैं। कभी-कभी पीला रंग ललाटीय (या पूर्विकीय) और कनपटीय (शंखिकीय) पट्टी बना होता है।

सीलोन की खाड़ी, मद्रास, और बंगाल की खाड़ी में यह सर्प बहुप्रचलित है। यह पूर्वी द्वीपसमूहों और चीन तथा जापान के सागरों में भी पाया जाता है। इस के बदन की लम्बाई छः फुट से अधिक तक पाई जातो है। वयस्क नरों में असाधारणतः मोटी और गोल दुम पाई जाती है।

हाइड्रोफिस निगोसिंक्टा

इस सर्प का सिर छोटा होता है। गर्दन पतली होती है जिसकी लम्बाई पूरे शरीर का चौथाई होती है। धड़ मध्यम रूप की लंबोतरी होती है। शुंडीय पट्टक लंबे की अपेक्षा अधिक चौड़ा होता है। केवल चतुर्थ ऊर्ध्वोष्ठ पट्टक नेत्रकोटर के निम्न भाग को बनाता है। दो पश्चनेत्रीय पट्टक होते हैं। प्रत्येक पश्चकपालीय पट्टक के पार्श्ववर्ती तीन कनपटीय शंखिकीय या ऊर्ध्वकपोलीय पट्टक होते हैं। दो जोड़े चिबुकीय पट्टक होते हैं जिनमें अग्रिम जोड़े एक दूसरे के संस्पर्शी होते हैं। गर्दन के चारों ओर २७ से लेकर २९ तक शल्क-पंक्तियाँ होती हैं। शल्क खपरैलवत आरोही, चतुष्कोण और उरःकूटीय होते हैं। उच्चतम शरीर तल के शल्क जितने लम्बे होते हैं उतने ही चौड़े भी होते हैं। उदरतलीय पट्टक स्पष्ट होते हैं। निकटवर्ती शल्कों के दूने इतने बड़े नहीं होते। वे चिकने होते हैं। उनकी संख्या ३२०-३३१ होती है। चार बड़े गुदाद्वारीय पट्टक होते हैं। पुच्छ या अंत एक बड़े शल्क रूप में होता है। धड़ के चारों ओर ४३ से ६१ तक काले रङ्ग की पूर्ण अंगूठियाँ होती हैं। उन

अँगूठियों (अँगूठीनुमा पूरी गोल पट्टियों) की चौड़ाई पार्श्व भाग तथा उदर तल पर समान ही होती है। केवल पृष्ठवंशीय रेखा पर ही कुछ अधिक चौड़ी होती है। बीच-बीच की पृष्ठभूमि आड़े रूप की चार या पाँच शल्क-पंक्ति तक का स्थान घेरे होती है किन्तु अँगूठीनुमा पट्टी उससे कम चौड़ी होती है। वह तीन शल्क-पंक्ति का स्थान घेरती है। मध्यवर्ती स्थलों का रंग ऊपरी तल पर हरापन युक्त जैतूनी, पार्श्व तथा उदर तल पर पीला-सा होता है। शिर की चोटी और ऊपरी ओष्ठ का रङ्ग काला-सा होता है। सिर की सारी ऊपरी किनारी में एक पीली पट्टी फैली होती है। निम्न जबड़ा श्वेत-सा होता है। पूछ पर नौ से लेकर ग्यारह तक आड़ी पट्टियाँ होती हैं। शरीर की लम्बाई पूँछ के साथ २३ इंच होती है जिसमें पूँछ पौने तीन इञ्च लंबी होती है। बदन का घेर सवा दो इञ्च और गर्दन का घेर १$\frac{1}{2}$ इञ्च पाया गया है।

हाइड्रोफिस स्ट्रिक्टिकोलिस

इस सर्प का सिर पतला होता है। वह चौड़ाई का दुगुना लंबा नहीं होता। बदन विशेषतया अग्रिम भाग में पतला होता है। दो जोड़े चिबुकीय पट्टक होते हैं जिनमें दोनों एक दूसरे के संस्पर्शी होते हैं। एक ही अग्रिम कनपटीय (शंखिकीय) या ऊर्ध्वकपोलीय पट्टक होता है जो इतना ही ऊँचा होता है जितना लम्बा होता है। एक पश्चनेत्रीय पट्टक होता है। गर्दन के चारों ओर ३४ शल्क-पंक्तियाँ होती हैं। उदरतलीय पट्टक स्पष्ट होते हैं किन्तु केवल अग्रिम ही निकटवर्ती शल्कों के दुगुने चौड़े होते हैं। उनकी संख्या ३९८ होती है। छः छोटे अग्रिम गुदाद्वारीय पट्टक होते हैं। शिशुओं में चिकने शल्क पाये जाते हैं। बदन पर ५५ कलौंछ

अँगूठियाँ बनी होती हैं जो पीले रंग की मध्यवर्ती पृष्ठभूमि के बराबर चौड़ी नहीं होतीं। वे उदर की अपेक्षा पृष्ठतल पर अधिक चौड़ी और गहरे रङ्ग की होती हैं। कभी-कभी पृष्ठवंशीय तथा उदरतलीय पंक्ति या रेखा पर अनुखण्डित होती हैं। सिर का ऊपरी तल पीला होता है और उस पर अव्यवस्थित रूप के कलौंछ परस्पर संयुक्त धब्बे होते हैं। उदरतल या बदन का अधोतल श्वेताभ (सफेद-सा) होता है। पूँछ में ग्यारह पृष्ठतलीय कलौंछ खंडपट्टियाँ होती हैं।

हाइड्रोफिस लोपेमायडीज

इस सर्प की गर्दन मध्यम रूप में लंबी और पतली होती है। सिर छोटा ही होता है और गर्दन से विशेष चौड़ा नहीं होता। शेष बदन पार्श्वभागों में अत्यधिक दबा या खड़ा होता है। शुंड (ऊपरी ओठ की नोक) का पट्टक ऊँचे की अपेक्षा अधिक चौड़ा होता है। नासापट्टक पीछे की ओर जितने लंबे होते हैं उतने ही चौड़े होते हैं। तृतीय तथा चतुर्थ ऊर्ध्वोष्ठीय पट्टक नेत्रकोटर में प्रवेश करते हैं। तृतीय पट्टक नासापट्टक को स्पर्श नहीं करता। तीन कनपटीय (शंखिकीय) या ऊर्ध्वकपोलीय पट्टक होते हैं। उनमें अग्र पट्टक सबसे बड़ा होता है। दो पश्चनेत्रीय पट्टक होते हैं। शीर्षीय पट्टक पीछे की ओर अधिक नोकीला होता है। पश्चकपालीय पट्टक लंबे और पतले होते हैं। प्रायः चतुष्कोण रूप के दो चिबुकीय पट्टक होते हैं, जो परस्पर स्पर्शी होते हैं। गर्दन के चारों ओर ३३ शल्क-पंक्तियाँ होती हैं। शल्क षटभुजी होते हैं, खपरैलवत् आरोही नहीं होते। उनमें नाम मात्र का केन्द्रीय क्षुद्रउद्वर्धन होता है। उदरतलीय पट्टक चिकने होते हैं। उनकी संख्या ३८७ होती है। गर्दन पर के पहले चालीस अधोतलीय पट्टक पार्श्ववर्ती शल्कों से तिगुने या चौगुने बड़े होते हैं। उनके पीछे अपेक्षाकृत क्रमशः छोटे और पतले पट्टक

ही होते हैं। धड़ के पिछले छः इंच भाग में तो ये अधोतलीय कठिनाई से ढूंढ़े जा सकते हैं। दो जोड़े क्षुद्र शल्कवत् गुदाद्वारीय पट्टक होते हैं। पूँछ चौड़ी होती है तथा आधार भाग में असाधारणतः प्रसारित होती है। ओठ का रंग पीला-सा होता है। सिर तथा गर्दन और धड़ के ऊर्ध्वतल हरापन युक्त जैतून होते हैं।

गर्दन तथा बदन के दबे हुए भाग के पृष्ठतल पर बहुत अस्पष्ट अपेक्षाकृत गहरी जैतूनी प्रायः काले रंग की खंडपट्टियाँ होती हैं किन्तु पार्श्व के हल्के रंग के भाग पर नहीं होतीं। पूँछ हरापन युक्त, जैतूनी, चितकबरी और काली छोर युक्त होती है। शरीर की लंबाई प्रायः ३८ इंच होती है जिसमें दुम की लंबाई पौने तीन इंच होती है। गर्दन के निकट घेर या परिधि दो इंच और सिर के पीछे ढाई इंच होती है। बदन की अधिक से अधिक ऊँचाई पाँच इंच और दुम के पहले पौने दो इंच होती है। वहाँ पर अधिक से अधिक मोटाई चौथाई इंच होती है। उसी स्थल पर उदरवर्ती तल की मोटाई इस से एक तिहाई कम होती है।

यह सर्प उड़ीसा के निकट समुद्र में पाया जाता है।

लोपेमिज कुर्टाज

इसका सिर छोटा, मोटा और अधिककोणीय होता है। धड़ का अगला भाग स्थूल होता है। बदन लम्बोतरा नहीं होता। पश्चकपालीय पट्टक सदा दो या अधिक खंडों में विभाजित होते हैं या पूर्णतः क्षुद्र पट्टकों रूप में छिन्न होते हैं। दो जोड़े चिबुकीय पट्टक होते हैं जो बीच में कोणीय शल्कों द्वारा पृथक्कीकृत होते हैं। केलव एक पश्चनेत्रीय पट्टक होता है। गर्दन के चारों ओर ३४ शल्क-पंक्तियाँ फैली होती हैं। मुख के कोण से लेकर मलद्वार तक एक पार्श्ववर्ती पंक्ति में २०९-२५२ शल्क होते हैं। उदरतलीय पट्टक निकटवर्ती

शल्कों के लगभग दूने चौड़े होते हैं। उनकी संख्या १५६-१६० होती है। चार छोटे अग्र मलद्वारीय पट्टक होते हैं। पीठ पर ५० से लेकर ५३ तक काले रङ्ग की आड़ी पट्टियाँ होती हैं। मध्य में वे सबसे अधिक चौड़ी होती हैं। वे लगभग एक दूसरे को स्पर्श-सी करती हैं और पार्श्व में गावदुम या क्रमशः पतली बनी होती है। उनके मध्य में पीलेपन रङ्ग की पृष्ठभूमि पट्टियों से अधिक स्थान नहीं घेरे होती। साधारणतया पट्टियाँ उदर तक फैली नहीं होतीं। किन्तु कभी-कभी धुंधले चिन्ह रूप में उदरतलीय पट्टक तक पहुँची होती है। उदर-पट्टक श्वेत होते हैं या बड़ी कलौंछ आड़ी पट्टियों युक्त होते हैं। कनपटी (शंखिकी) या ऊर्ध्व कपोल पर न्यूनाधिकता स्पष्ट रुप की पीलेपन रङ्ग की लकीर होती है। पूँछ काली होती है। उसके आधार स्थल पर केवल दो पीले खड़े धब्बे होते हैं। और बदन की लम्बाई १४ इंच परिधि (घेर) २ इंच होता है। यह उड़ीसा के निकट समुद्र में मिलता है।

केरीलिया जर्डोनी

इस सर्प का सिर छोटा होता है। थूथन कुछ नोकीला-सा और हल्कागावदुम (धीरे-धीरे छोर की ओर पतला बना हुआ) होता है। बदन की लम्बाई मध्यम होती है। ललाटीय पट्टक छोटे होते हैं, वे अग्रिमनेत्रीय पट्टक से अधिक बड़े नहीं होते। एक पश्चनेत्रीय पट्टक होता है। पाँच ऊर्ध्वोष्ठीय पट्टक होते हैं जिन में से तीसरे और चौथे नेत्रकोटर में प्रविष्ट होते है। अन्तिम पट्टक पश्चनेत्रीय पट्टक के नीचे होता है। दो या तीन कनपटीय या शंखिकीय पट्टक प्रत्येक पश्चकपालीय पट्टक के पार्श्व में होते हैं जिन में से अग्रवर्ती पट्टक पंचम ऊर्ध्वओष्ठीय पट्टक के पीछे ओष्ठीय किनारी में प्रवेश करता है। दो जोड़े चिबुकीय (ठुड्डी) के पट्टक होते हैं, वे एक दूसरे के

सम्पर्क में होते हैं। शल्क खपरैलवत एक दूसरे पर आरोहित होते हैं। वे बड़े और लम्बाई की अपेक्षा अधिक ऊँचाई के होते हैं। उनका शीर्ष थोड़ा-सा कटा होता है। प्रत्येक शल्क में तीव्र रेखोद्वर्धन होता है। गर्दन पर उनकी पन्द्रह या सत्रह पंक्तियाँ होती हैं तथा बदन के मध्य उन्नीस या इक्कीस पंक्तियाँ होती हैं। उदरतलीय पट्टक स्पष्ट होते हैं किन्तु निकटवर्ती शृङ्खलाओं के शल्कों के दूने बड़े नहीं होते। वे द्विउद्वर्धनीय होते हैं। उनकी संख्या २३५-२३८ होती है। गुदाद्वारीय पट्टक छोटा होता है। पुच्छान्तीय शल्क बड़ा होता है। मुख के परिखा या प्रसीता युक्त विषदंत के पीछे सात साधारण दाँत होते हैं। इसकी धड़ पर ३४ से लेकर ३८ तक काली आड़ी पट्टियाँ होती हैं जो पीठ पर सब से चौड़ी होती हैं और शिशुओं में तथा अर्द्ध प्रौढ़ों में उदर तक फैली होती हैं। इसके बदन की गोलाई (परिधि) दो इञ्च होती है। पूँछ से लेकर बदन की लम्बाई ३० इञ्च होती है जिसमें पूँछ ३½ इञ्च लम्बी होती है।

पेलामिस प्लेटूरस

इसके पश्चवर्ती ललाटीय पट्टकों के मध्य एकाकी पट्टक नहीं होता। धड़ के अग्रिम भाग में १६ लम्बी शल्क-शृङ्खलाएँ लेकर ३६ तक काली अँगूठियाँ आवेष्ठित होती है जो अंतर्वर्ती स्थानों से अधिक चौड़ी होती हैं। अर्थात् यह ऐसी आड़ी पट्टियों को सारे शरीर पर समानान्तर रूप में रखता है जो उदर तल तक फैली रह कर गोल अंगूठीनुमा पट्टियाँ या धब्बे बनाती है। एक काली पट्टी पश्च शीर्ष को पार कर ऊर्ध्ववर्ती शीर्ष पट्टक के ऊपर और निचले जबड़े पर भी बढ़ी होती है किंतु यह प्रायः पड़ोस की दूसरी अँगूठी या अंगूठीनुमा पट्टी से संयुक्त नहीं होती। थूथन का ऊपरी तल पीला होता है। ऊर्ध्वोष्ठीय पट्टक काले होते हैं।